## मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू ( ठाणंगसुत्त, ५२९ )

えてわける部にを見らな

MACC

「古西南川同島地山北省

उनके मालित स्थरवरा

500000

間(引え)元は、職性は2

# अनुसधान श्री हेमचन्द्राचार्य 💷

國制制國家國家開展

20220

व्यातिकोके यातिवर्ष्टे मई लोक वाजनत्व अगद प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी प्रतिका वर्गारत्वः १०१४ 和时行引 रत्र र य ह संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि रनखानः हरू।। 6 82 -

। ज्ये बी लो के में। विद्वन्नन हेल कालिश्वयूर

MARZH

स्टजन

रहे के का लि प्रजीरजनः

इतररजवः

ही ने ज में वे

म कानि य

HI

T. 37 A

192

37

1610

विदिन्दित्व 17539941

921228 雨雨 विष्ये देए 28 वरस्व 248 रनिर्म २ 30

र्वदनित्ते करका पना

रेवेडेकी लाग

2212239

雨一根 南田武

Jain Education Internation

hid

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2007

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू ( ठाणंगसुत्त, ५२९ ) 'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'



प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक सम्पादन,संशोधन,माहिती वगेरेनी पत्रिका



सम्पादक: विजयशीलचन्द्रसूरि



श्रीहेमचन्द्राचार्य

# कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि अहमदाबाद

### अनुसन्धान ४२

आद्य सम्पादक: डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक: विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क: C/o. अतुल एच. कापडिया A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी महावीर टावर पाछळ अमदावाद-३८०००७ फोन: ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

- प्राप्तिस्थान: (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर १२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड, आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां, अमदावाद-३८०००७
  - (२) सरस्वती पुस्तक भण्डार ११२, हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

#### मुद्रक:

#### क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल

९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३ (फोन: ०७९-२७४९४३९३) निवेदन

साहित्यनुं सर्जन अने संशोधन आ बे वानां ऊंडी निष्ठा अने सज्जता मागी ले छे. उमाशङ्कर जोशीए लख्युं छे के ''माणसनी एक उंमर एवी होय छे के ते उंमरे जेम तेना चहेरा पर 'खील' थाय छे तेवी ज रीते तेना मनमां सर्जक थवाना कोड जागता होय छे.'' आ धखारामां ज घणा लोको पोताना लेखनने 'सर्जन' समजवा (अने गणाववा) मांडता होय छे. सद्भाग्ये, संशोधननुं क्षेत्र, हजी सुधी मोटा भागना लोको माटे शङ्कास्पद बाबत रही होवाथी, आवा धखारानो भोग बनतां बची गयुं छे.

संशोधननो विकल्प छे सम्पादन. संयोजन, संकलन, संचय पण तेमां ज समाय. जे लोको पासे सर्जन माटेनी क्षमता तथा अनुकूलता नथी, अने संशोधन परत्वे रुचि नथी, तेवा लोको आ विकल्प पसंद करता जोवा मळे छे. आमां महेनत ओछी अथवा जराय नहि, अने नाम-कमाणी सर्जक/संशोधक जेटली ज; बल्के घणीवार तो तेथी घणी वधारे.

ताजेतरनां वर्षोमां, जैन संघना ज्ञानधननो उपयोग करीने, सम्पादन– प्रकाशनना विषयमां घणाबधा जनोए झूकाव्युं छे. पूर्वना एटले के विगत १०० वर्षोना गाळाना विद्वान गृहस्थोए तथा मुनिराजोए, पोताने उपलब्ध टांचां साधनोनी ज सहायथी, मुख्यत्वे पोतानी सज्जता तथा निष्ठाना जोरे ज, असंख्य पुराणा ग्रन्थोनुं सम्पादन तथा प्रकाशन करेलुं छे. ते ग्रन्थो आजे कां तो अप्राप्य छे, कां तो जर्जरित होवाने लीधे उपयोगमां आवे तेवा नथी. तेवा सेंकडो ग्रन्थोनो पुनरुद्धार, पुनर्मुद्रण, आ लोको करे– करावे छे.

बेशक, आवो पुनरुद्धार एक उपयोगी कार्य ज गणाय. परन्तु,

मूल सम्पादनना समये अप्राप्त एवां मबलख साधनो आजे लभ्य छे, तो पण तेनो उपयोग थतो नथी; करवानी फुरसद ज नथी; ते जूना प्रकाशनने एकवार वांचनमां लईने तेमां रही गयेल क्षतिओने शक्य दूर करवानुं के तेमां ज मूकाएला शुद्धिपत्रकने सहारे ते ग्रन्थगत भूलोने सुधारी लेवानुं पण ते लोकोने सूझतुं नथी; अने 'जे जेम छे तेम' छपावी देवामां आवे छे, ते अभ्यासीओने कठे तेवी बाबत छे.

छतां, आ बाबतने क्षम्य गणी शकाय : जो ते नव-सम्पादको जे ते ग्रन्थना आवरण (Title) पर, अंदरना आवरण पर, सम्पादक तरीके पोतानां नाम-ठाम न छपावता होय तो, अने मूळ सम्पादकोनां ज नाम राखी मूकता होय तो. स्थिति जरा ऊलटी छे. संघना नाणां अने प्रेसवाळानी महेनत – आ बेने बाद करतां पोतानुं कशुं ज कर्तृत्व न होवा छतां आ लोको सम्पादक वगेरे तरीके पोतानां नामोने मुख्य राखे छे, अने दिव्यकृपाओ, प्रेरणा, सहायको – आ बधांनां नामादि उपरांत मूळ सम्पादकादिनां नामादि राखे छे. अमुक वखते तो तेओ पोतानी तसवीरो (Photo) पण मूके छे अने सम्पादक तरीके 'समर्पण' पण आलेखे छे ! सिंघी ग्रन्थमालाना ग्रन्थो तेमज त्रिषष्टिशलाकाचरित, सिद्धहेम लघुवृत्ति वगेरे सेंकडो ग्रन्थोनां आ प्रकारनां पुन:मुद्रण जोवा मळे छे. साहित्यसेवा, श्रुतसेवा, लोकोपकार आ बधुं आमां हशे ज, पण तेना करतां वधु लक्ष्य, विना प्रयासे, नाम-कमाणीनुं होय तेम छाप अवश्य पडे छे.

आनी सामे जापानथी पुन: प्रकाशित, गुजरात विद्यापीठना 'संमतितर्कप्रकरणम्'नो दाखलो टांकवो जोईए. १९८४मां RINSEN Book Co. द्वारा मुद्रित ए ग्रन्थमां प्रकाशक संस्थानुं नाम अने जापनीस लिपिमां ग्रन्थ-नाम सिवाय कशुं ज नूतन उमेरण नथी. बधुं ज मूळ आवृत्तिनुं यथावत् राखवामां आवेल छे. संयोजक, प्रेरक, पुन:सम्पादक, द्रव्यसहायक, दिव्य आशिष, आशीर्वाद, फोटोग्राफ इत्यादि पैकी एक पण उमेरण आ प्रकाशनमां जोवा नथी मळतुं. अनुरोध करवानुं मन थाय छे सहुने के आपणा सद्भाग्ये आजे अनर्गळ हाथपोथीओ अने अन्य साधनो उपलब्ध छे, तो तेनो महत्तम उपयोग करशो, अने नवेसरथी सम्पादन करशो, तो सम्पादन आपोआप संशोधन थशे, मूळ सम्पादकोनो आत्मा विशेष तृप्ति पामशे, अने अभ्यासीओ पर मोटो उपकार थशे.

- शी.

# अनुक्रमणिका

श्रीपश्चसूत्र-स्तबक	ं सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	१
थोडी लघु कृतियाँ	म. विनयसागर	३९
प्राकृत जैन शाहित्य में उपलब्ध 'ध	र्म शब्द	
के विशेष अर्थों की मीमांसा	डॉ. अनीता बोथरा	५३
अंजना : वाल्मीकि और विमलसूरि	के	
शमायणों में वर्णित	डॉ. कौमुदी बलदोटा	६४
Dānalakṣaṇa or Dānaśāsana by		
Śrīvasu-pūjyarsi	Jagannatha	७१
टूंकनोंध : आवश्णचित्र-पश्चिय	— शी.	હદ્દ
नवां प्रकाशनो		७९

# श्रीपञ्चशूत्र-स्तबक

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

पञ्चसूत्र ए जैन साधको माटे अमृतऔषधतुल्य ग्रन्थ छे. वर्तमान जैन संघमां सर्वाधिक वंचातो-छपातो ग्रन्थ आ पञ्चसूत्र छे, एम कही शकाय. मूळे श्रीमद् हरिभद्रसूरिकृत आ ग्रन्थ कालक्रमे चिरन्तनाचार्यकृत अने ते रीते अज्ञातकर्तृक गणायो छे. तेनां कारण कयां होय ते तो अकळ छे, परन्तु आ बाबत घणी विलक्षण गणाय तेमां शंका नहि. बाह्यान्तर अढळक प्रमाणोना आधारे आ मूळ रचना पण हरिभद्रसूरि महाराजनी ज होवानुं सिद्ध थई शके तेम छे. (जुओ अनुसन्धान-११(ई. १९९८)मां 'पञ्चसूत्रना कर्ता कोण, चिरन्तनाचार्य के आ.हरिभद्र ?' प. ७१)

आ बहुमूल्य ग्रन्थ उपर प्रमाणमां, बहु ओछा विद्वज्जनोए पोतानी कलम चलावी छे. तेथी आना उपरनी विवेचनात्मक कोई पण नानी-मोटी कृति मळे तो ते स्पृहणीय बनी रहे तेम छे. श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृत अवचूरि 'अनुसन्धान-११'मां मुद्रित थई छे. ते पछी आ **'पञ्चसूत्र-स्तबक**' अत्रे आजे प्रस्तुत थाय छे. आवी बीजी कृतिओ पण अन्यान्य भण्डारोमां सचवाई हशे ज.

प्रस्तुत स्तबकनी प्रति कच्छ-कोडायना ज्ञानभण्डारनी प्रति छे. स्तबक लखनार त्यांना ज एक श्रावक छे : वेलजी भारमल. १९-२० मा शतकना अरसामां कच्छमां अनेक श्रावक-श्राविकाओ थयां, जे विद्वान्, शास्त्रोनां मर्मज्ञ अने तत्त्वपिपासु तेमज अध्यात्मसाधक हतां. अेमनां ज्ञान तथा चिन्तन विषे आ प्रकारनी हस्तप्रतिओ तेमज मुद्रित ग्रन्थादि द्वारा जाणकारी सांपडे त्यारे भारे अचंबो तो थाय ज; अहोभाव पण ऊपजे छे. वेलजी भारमल आ कक्षाना ज एक श्रावक हशे,तेवुं अनुमान तेमणे लखेला आ स्तबकना वांचन थकी करी शकाय छे.

पांचेय सूत्रना लगभग एकेएक शब्दने तेमणे सुपेरे खोल्यो छे. खास करीने पांचमा सूत्रमां आवता गहन दार्शनिक पदार्थोनुं बयान करतां सूत्रात्मक वाक्योने समजाववानो तेमनो यत्न प्रशंसाई अने विस्मयप्रेरक बने तेवो मजानो छे. २३ पत्रोनी आ प्रति वि.सं. १९५८मां ज लखायेली छे, एटले आ लेखक श्रावकनो सत्ताकाळ २०मी शताब्दीनो ज छे, ते आपमेळे सिद्ध थाय छे. कोडाय गाम ए कच्छना काशी के लघुकाशी तरीके ओळखातुं. त्यांना श्रावकोनी विद्वत्ताने लीधे ते क्षेत्रनी आवी ख्याति थई हती. त्यांना ग्रन्थभण्डारो पण खूब वखणाता. अमे त्रणेक वर्ष ऊपर विहार करतां त्यां गया त्यारे त्यांना श्रीकोडाय जैन महाजन भण्डारनी आ प्रति (पो. ६१, क्र. ३१८) जोवामां आवतां तेनी झेरोक्स नकल करावेली. तेना ऊपरथी आनी प्रतिलिपि साध्वीश्री दीप्तिप्रज्ञाश्रीजीए करी आपी हती, तेना आधारे आ सम्पादन थयेल छे.

लेखक संस्कृत-प्राकृतना सारा जाणकार हशे तेवुं तेमणे ठेर ठेर टांकेला टीका-पाठो तथा श्लोको-गाथाओ जोतां समजाय छे. अर्थघटन करवामां पण तेमणे खास परिश्रम करवो पडतो होय तेम नथी जणातुं. अर्थ तेमने सहजपणे स्फुरतां होय तेवुं लागे. नजीकना समयनी ज भाषा होई भाषाकीय विशिष्ट प्रयोगो खास जोवा मळता नथी. हा, कच्छी लढण जरूर क्यांक जोवा मळे.

सूत्रगत पाठोमां केटलेक ठेकाणे मूळ कृति करतां भिन्नता जोवा मळे छे. लागे छे के आ सूत्रनो नित्यपाठ करतां करतां भणेला माणसनी जीभे जे सहज जुदा शब्द के पाठ चडी जाय, तेनी आमां असर हशे. अथवा तेमनी समक्ष पञ्चसूत्रनी जे प्रति हशे तेमां आ प्रकारना पाठ होवा जोईए. केटलांक स्थानो आपणे जोईए :

सूत्र: सुकडाणासेवणं स्तबक: सुकडाणुसेवणं (१) अथवा स**कडा**सेवणं स्तबक: हेऊ सव्वकल्लाणाणं (१) सूत्र: हेऊ सयलकल्लाणाणं सूत्र: लोकविरुद्धे अणुकंपापरे स्तबक: लोगविरुद्धं करुणापर० (२) सूत्र: असुहाणूबंधमञ्चत्थं स्तबक: असुहाणुबंधमच्चंतं (२) सुत्र: न इओ सुंदरतरमत्रं स्तबक: न इओ सुंदरमत्रं (२) स्तबकः न भासिज्जा (२) सूत्र: एवं न भासिज्जा सुत्र: ०गहणेणं विवागदारुणं स्तबक: ०गहणेणं । एव० (२) च ति । एव०

२

#### डिसेम्बर २००७

सूत्रः	तप्पडिवत्ति <b>विग्घो</b>	स्तबक: तप्पडिवत्ति <b>विग्धं</b>	(३)	
सूत्रः	<b>सुविणे</b> व सव्व <b>माउलं</b> ति ।	स्तबक: सुविणुव्व सव्वमालमाल	लंति ।	
	अलमेत्थ	ता अलमित्थ	(३)	
सूत्रः	संभवंतोसहे	स्तबक: संभवे ओसहे	(३)	
सूत्रः	तस्संपायणे	स्तबक: तस्स संपाडणे	(३)	
सूत्रः	पहाणं <b>बुहाणं</b> परमत्थओ	स्तबक: पहाणं परमत्थओ	(३)	
सूत्रः	<b>सुपु</b> रिसोचिअमेअं	स्तबक: पुरिसोचिअमेअं	(३)	
सूत्रः	सुगुरुसमीवे, पूजिऊण	स्तबक: गुरुसमीवे, पूइत्ता	(३)	
सूत्रः	समहिवासए <b>विसुद्धजोगे</b>	स्तबक: समहिवासए विसुज्झमाणे	१ (३)	
	विसुज्झमाणे			
सूत्र:	न इओ <b>हिअं तत्तं</b>	स्तबक: न इउ <b>हिअतत्तं</b>	(४)	
सूत्रः	निरुद्धपमा <b>यचारं</b>	स्तबक: निरुद्धपमा <b>यायारे</b>	(४)	
सूत्र:	तत्तसंवेयणाओ कुसलसिद्धीए	स्तबक: तस्स संवेयणाओ		
		कुसलासयवुड्ढीओ	(४)	
सूत्र:	<b>अरूविणी</b> सत्ता	स्तबक: अरूवी सत्ता (५)		
सूत्र:	०णंतगुणं खुतं	स्तबक: ०णंतगुणं <b>तं तु</b> (५)		
सूत्र:	अविसेसो <b>बद्धमुक्राणं</b>	स्तबक: अविसेसो <b>अबंधमुकाण</b>	i (५)	
बीजी एक विलक्षणता ए जोवा मळे छे के मूळ कृतिमां ज्यां ज्यां				

बाजा एक विलक्षणता ए जावा मळ छ क मूळ कृतिमा ज्या ज्या प्रथमा-एकवचनान्त पदोमां 'ए'कारान्त-श्रुति छे : दा.त. धम्मे, जीवे, वगेरे; त्यां आ स्तबकप्रतिगत पाठमां 'ओ'कारान्त-श्रुति जोवा मळे छे : दा.त. धम्मो, जीवो, इत्यादि.

कोडायना ज्ञानभण्डारना कार्यवाहकोनो, प्रतिनी नकल करावी आपवा बदल आभार मानुं छुं.

# पञ्चसूत्र स्तबक सहित

।। ए८०।। नमो वीयरागाणं सव्वण्णूणं देविंदपूइआणं जहडिअवत्थुवाईणं तेलुकगुरूणं अरहंताणं भगवंताणं ।

नमो वीतरागेभ्य: सर्वज्ञेभ्य: देवेन्द्रपूजितेभ्य: यथास्थितवस्तुवादिभ्य:

त्रैलोक्यगुरुभ्य: ।

नमस्कार हो वीतरागोनइं सर्वज्ञोनइं देविद्रपूजितोनइं यथास्थित वस्तुना कहनारोनैं त्रैलोक्यगुरुओनइं अरिहंतोनें भगवंतोनइं ।

जे एवमाइक्खंति-

जे भगवंत इम कहें छइं-

इह खलु अणाइजीवे अणाइजीवस्स भवे अणाइकम्मसंजोग-निवत्तिए दुक्खरूवे दुक्खफले दुक्खाणुबंधे ।

इहां निश्चयें अनादिजीव छैं । अनादि जीवनें भव छइं । ते भव अनादिकर्मसंयोगें नीपजाव्यौ छइं । ए भव दुक्खरूप छइं | दुख एहनुं फल छइं। एथी दुक्खनो ए(अ)नुबंध छइं ।

एअस्स णं वुच्छित्ती सुद्धधम्माओ । सुद्धधम्मसंपत्ति(त्ती) पावकम्मविगमाओ । पावकम्मविगमो तहभवत्ताइभावाओ ।

ए भवनौ विच्छेद शुद्धधर्म थकी थाय। सुद्ध धर्मनी प्राप्ति पापकर्मना विनाशथी नीपजैं। पापकर्मनो विनाश तथाभव्यत्वादिभावथी थाइं।

तस्स पुण विवागसाहणाणि-

तेहनां वली विपाकसाधन अनेक देखाडइं छइं । चउसरणगमणं, दुक्कडगरिहा, सुकडाणुसेवणं । च्यारनइं सरणें जवुं, दुःकृतनी गर्हा, सुकृतनुं सेववुं सारी परैं । अउ कायव्वमिणं होउकामेणं सया सुप्पणिहाणं । ए कारणं करवुं ए आत्मरूपें थवा इंछइं तेणइं सदैव सुप्रसि(णि)धान । भुज्जो भुज्जो संकिलेसे तिकालमसंकिलेसे । वारंवार संक्लेशनै विषें त्रिण काल असंक्लेशनैं विषें ।

जावज्जीवं मे भगवंतो परमतिलोगनाहा अणुत्तरं( र )पुण( ण्ण )-संभारा खीणरागदोसमोहा अचिंतचिंतामणी भवजलहिपोआ एगंतसरणा अरहंता सरणं ।

जिहां सूधी जीव तिहां लगें मुझनें भगवंत परमत्रिलोकनाथ, अनुत्तर पुण्यसमूह छैं जेहानें, क्षय गया छें राग-द्वेष-मोह जेहोनें, अचित्यचिंतामणी,

Jain Education International

संसारसमुद्रथी तारिवाने जिहाज, एकांतशरण योग्य अरहंत शरण हो ।

तहा पहीणजरमरणा अवेअकम्मकलंका पणडवाबाहा केवलनाण-दंसणा सिद्धिपुरनिवासी निरुवमसुहसंगया सव्वहा कय किज्जा( च्वा )-सिद्धा सरणं ।

तिम प्रक्षीण छैं जरामरण जेहोनइं, गयो छैं कर्मकलंक जेहोनें, प्रगट (प्रणष्ट) छैं व्याबाधा जेहोनइं, केवलज्ञान केवलदर्शन छैं जेहोनइं, मोक्षपुरना वासी, निरुपम सुखनइं पाम्या छैं, सर्वथा कृतकृत्य थया, एहवा सिद्ध शरण हो।

तहा पसंतगंभीरासया सावज्जजोगविरया पंचविहायारजाणगा परोवयारनिरया पउमाइनिदंसणा झाणझ( ज्झ )यणसंगया विसुज्झमाण भावा साहू सरणं ।

तथा प्रशांत गंभीर छैं आशय जेहोनो एहवा, सावद्य योगथी जे विरम्या एहवा, ज्ञानाचारादि पंचविधाआचारनां जांणणहार एहवा, परोपकार करवामां उद्यमी एहवा, संसारमां वसतां पद्मादिकनुं दृष्टांत छैं जेहोने एहवा, ध्यांने अध्ययनैं संयुक्त एहवा, विशुध्यमान छैं परिणाम जेहोनौ एहवा साधु शरणं।

तहा सुरासुरमणुअपूइओ मोहतिमिरंसुमाली रागदोसविसपरममंतो हेऊ सव्वकल्लाणाणं कम्मवणविहावसू साहगो सिद्धभावस्स केवलीपन(न्न)त्तो धम्मो जावज्जीवं मे भगवं सरणं ।

तिम सुरइं असुरइं मनुष्यइं पूज्यौ,मोहरूप अंधकार फेडवा सूर्य, रागद्वेषरूप विषने वारवा परममंत्र, कारण समस्त कल्याणोनुं, कर्मरूप वननें विषे अग्नि, साधक सिद्धभावनो एहवो, केवलीनो प्ररूप्यो धर्म्म जहां जीव तिहां सूधी मुझने भगवंत शरण हो ।

सरणमुवगओ अ एएसिं गरिहामि दुक्कडं ।

शरणें पाम्यो हुं एहोनइं, गरहु छु दुकृत प्रतें ।

जण्णं अरहंतेसु वा सिद्धेसु वा आयरिएसु वा उझ्झाएसु वा साहूसु वा साहुणीसु वा अन्नेसु वा धम्मडाणेसु माणणिज्जेसु पूअणिज्जेसु । जे अरहंतनें विषें, सिद्धोनें विषें, आचार्योनइं विषें, उपाध्यायोनें विषें, साधुओनें विषे, साध्वीओनें विषें, बीजाय वा धर्मना ठेकाणाओनें विषें, मानवा योग्योनें विषे, पूजवा योग्योनें विषै: ।

तहा माइसु वा पिईसु वा बंधूसु वा मित्ति( त्ते )सु वा उवयारिसु वा ओहेण वा जीवेसु मग्गडिएसु अमग्गडिएसु मग्गसाहणेसु अमग्गसाहणेसु ।

तिम माताओनें विषे, पिताओने विषें, बंधुओने विषें, मित्रोनें विषें, उपकारी जीवोनें सामान्यें विषइं, अथवा जीवोनें विषें, मार्गे रह्या जीवोनें विषें, अमार्गे प्रवर्त्तता जीवोने विषें, मार्गना साधन रत्नत्रयादिक ते साधननें विषें, अमार्ग अज्ञानवर्त्त्यादिक ते अमार्ग-साधनोनें विषें ।

जं किंचि वितहमायरियं अणायरिअव्वं अणित्थि(च्छि)अव्वं पावं पावाणुबंधि सुहमं वा बायरं वा मणेण वा वायाए वा काएण वा कयं वा कारावियं वा अणुमोइअं वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा इत्यंथा( वा ) जम्मे जम्मंतरेसु वा गरहिअमेयं दुक्कडमेयं उज्झिअव्वमेयं । विआणिअं मए कल्लाणमित्तगुरुभगवंतवयणाओ । एवमेअंति रोइअं सद्धाए । अरहंतसिद्धसमक्खं गरहामि अहमिणं । दुक्कडमेयं उज्झिअव्वमेअं । इच्छ मिच्छामि दुक्कडं मिच्छामि दुक्कडं मिच्छामि दुक्कडं ।

जे कांइ असत्य-विपरीत आचर्युं अणआचरवाया(यो)ग्यं, इच्छामां लाववा पाप-अयोग्य, पापनो अनुबंध जेहथी थाय एहवउं, सूक्ष्म अथवा बादर अथवा मनोयोगें अथवा वचनयोगे अथवा काययोगें अथवा कर्युं अथवा कराव्युं अथवा अनुमोदिउं, अथवा रागें करीनें वा द्वेषें करीने मोहें करीनें वा, इह जन्मने विषें वा, जन्मने विषें, जन्मांतरोनें विषें वा, गरहागोचर करवा योग्य ए दु:कृत छैं, ए त्यजवायोग्य छें । ए विषें जाण्युं में कल्याणमित्र एहवा श्रीगुरुभगवंत तेहना वचन थकी । इमज ए भाव छें रुचिगोचर श्रद्धायें करीनइं । अरिहंत सिद्ध भगवंतोने समक्ष । सर्व अरिहंत सिद्ध साक्षी छै जिहां ए रीतें गर्हाविषय करुं छुं हुं एहनइं । दु:कृत छें ए पंडितवीर्यनी प्रबल स्फुरणायै, ए स(त्य)जवा योग्य छै । इहां मिच्छा मि दु:कडं मिथ्या माहरुं दु:कृत हो मुंझनइं ।

होउ मे एसा सुपत्थणा होउ मे इत्थव( ब )हुमाणो होउ मे इओ मुक्खबीअंति । होउ मे एसा सम्मं गरिहा होउ मे अकरणनियमो बहुमयं ममएयंति । इच्छामि अणुसर्डि अरहंताणं भगवंताणं गुरूणं कल्लाणमित्ताणं ति । होउ मे एएहि संजोगो । पत्तेसु एएसु अहं सेवारिहे सिया आणारिहे सिया पडिवत्तिजुत्ते सिआ निरइआरपारगे सिआ ।

ए हवणां वर्ण्यमान सुष्टुं प्रार्थना हो मुझनें, ए क्रियानें विषें बहुमान हो मुझनें, ए भाव मोक्षनुं बीज हो मुझनें, ए सम्यग्-सारी गर्हा हो मुझनें, अकरणनो नियम बहुमत छें मुझनें ए तत्त्व इति । इच्छुं छुं अनुंशिष्टि प्रतिं अरहंतोनी भगवंतोनी, गुरुओनी कल्याणमित्र साधक समूहनें । ए भावें माहरइं ए अर्हतादिको साथे संयोग पुण्ययोगें पामें छतें ए अरिहंतादिक[नी] हुं सेवामां प्रवर्त्तवा योग्य थाओ, अरिहंतादिकोनी आज्ञानें योग्य थाओ, प्रतिपत्ति-सेवारूप तेंणें योग्य थाओ, निरतिचारपारगामी धर्ममां थाओ ।

संविग्गो जहासत्तीए सेवेमि सुकडं । अणुमोएमि सव्वेसिं अरहंताणं अणुडाणं सव्वेसिं सिद्धाणं सिद्धभावं सव्वेसिं आयरिआणं आयारं सव्वेसिं उवज्झायाणं सुत्तप्पयाणं सव्वेसिं साहूणं साहुकिरिअं सव्वेसिं सावगाणं मुक्खसाहणजोगे सव्वेसिं देवाणं सव्वेसिं जीवाणं होउकामाणं कल्लाणासयाणं मग्गसाहणजोगे ।

संविग्न एहवौ यथाशक्तिं सेवुं सुकृत प्रति । अनुमोदुं समस्त अरिहंतोनुं अनुष्टान प्रति, सर्वसिद्धा(द्धो)ना सिद्धभाव प्रति, समस्त आचार्योना आचार प्रति, समस्त उपाध्यायोना सूत्रप्रदांन प्रति, समस्त साधुओनी साधु एहवी क्रिया प्रतिइं । समस्त श्रावकोना मोक्षसाधन योगोनें अनुमोदुं छुं, सर्व देवोना, समस्त जीवोनां, सिद्धभाव थवानो काम छें जेहोंनें एहवा, कल्याणरूप छें परिणाम जेहोनां एहवा जीवोनां, मोक्षमार्गना साधनार एहवा ज्ञानादि योग प्रति ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्मं विहिपुव्विआ सम्मं सुद्धासया सम्मं पडिवत्तिरूवा सम्मं निरईयारा परमगुणजुत्तअरिहंताइसामत्थओ ।

थाओ मुझनें ए अनुमोदना सम्यग् विधिपूर्विका, ए अनुमोदना सम्यक्-सारी जे अनुमोदना करतां शुद्ध छैं आशय जेहमां एहवी अनुमोदना हो, सम्यक्-समीचीन प्रतिपत्तिरूप प्रतिपत्तिभावनी अनुकूलतायें अंगीकरणरूप सम्यक्-निरतिचारा अतिचार रहित एहवी अनुमोदना हो । उत्कृष्ट गुण सहित अरिहंतादिक गुणनिधान उत्तम हेतु, तेहोना सामर्थ्य थकी ।

अचिंतसत्तिजुत्ता हि ते भगवंतो वीअरागा सव्वणू परमकल्लाणा

## परमकल्लाणहेओ( ऊ)सत्ताणं ।

अचित्य शक्ति सहित ते अरिहंतादिक गुणी छइं ज्ञानादिक गुणवंत रागरहित सर्वज्ञ परमकल्याणप्राप्त एहवा छइं । परमकल्याणना कारण जीवोनें ते ते (हेते ?) ।

मूढे अह्मि ( अम्हि ) पावे अणाइमोहवासिए अणभिन्ने भावओ हिआहिआणं अभिन्ने सिया अहिअनिवित्ते सिआ हियपवित्ते सिआ आराहगे सिआ उच्चिअपडिवत्ति( त्ती )ए सव्वसत्ताणं सहिअंति इच्छामि सुक्कडं इच्छामि सुक्कडं इच्छामि सुक्कडं ।

मूर्ख अमे पापवंत छुं। ए विशिष्ट पुरुषोनी [आगे?] अनादि मोहें करी वासित छुं, अनभिज्ञ छुं परमार्थथी हिता[हित]प्रतिपत्ति करवानें,हितना अभिज्ञ-जांण थाऊं, अहितथी निवृत्त थाऊं, हितमां प्रवृत्त थाऊं,आराधक थाऊं, उचित-प्रतिपत्तिइं करीनइं सर्व जीव संबंधिनइं स्वहित इच्छुं छुं सुकृत प्रति। त्रणवार ए पदनो पाठ (स्वहित इच्छुं छुं सुकृत प्रतिं स्वहित इच्छुं छुं सुकृत प्रति) ।

एवमेयं सम्मं पढमाणस्स सुणमाणस्स अणुप्पेहमाणस्स सिढिली-भवंति परिहायंति खिज्जंति असुहकम्माणुबंधा । निरणुबंधे वाऽसुहकम्मे भग्गसामत्थे सुहपरिणामेणं, कडगबद्धे विव विसे, अप्पफले सिआ सुहावणिज्जे सिआ अपुणभावे सिआ ।

ए रीतें ए सम्यक् संवेगसार भणवा(ता)जीवनइं, अन्य समीपथी सांभलतां जीवनैं,अर्थानुस्मरण द्वारायें अनुप्रेक्षानें करतो एहवानें, मंदविपाकतायें शिथिल थाय, पुद्रलनें ओसरवें परिहानि थाय, आशयविशेषाभ्यांसद्वाराइं मूलथी ज क्षय पामइं, भावरूप अथवा कर्मविशेषरूप असुभ कर्मना अनुबंध क्षय पामतां शेष रह्युं असुभकर्म ते अनुबंधरहित थाय, भग्न छें सामर्थ्य जेहनुं विपाक प्रवाहनें आश्रईनें एहवुं अशुभकर्म थाय । अनंतरोदित सूत्रथी उपने शुभ परिणामें करीनें कटकबद्ध जिम विष मंत्रि-सामर्थ्य (मंत्रसामर्थ्ये) अल्पफल थाय तिम अल्प फल क० अल्पविपाक थाय, सुखैं अपनय करवा योग्य अशुभ कर्म थाय, अपुनर्भाव अशुभकर्म थाय ।

तहा आसगलिज्जंति परिपोसिज्जंति निम्मविज्जंति सुहकम्माणु-

बंधा । साणुबंधं च सुहकम्मं पगिइं पगिडभावज्जियं नियमफलयं सुपउत्ते वि व महागए सुहफले सिआ सुहपवत्तगे सिआ परमसुहसाहगे सिआ । तथा आसकलीक्रियंते-आक्षिपिइं समीप थयें, परिपोष्यंते-परिपोषियें भावनें उपचयें करी, निर्म्माप्यंते-परिसमाप्ति पमाडीयें शुभकर्मना अनुबंध-कुशलकर्मना अनुबंध ए भाव: । सानुबंधं च पुन: शुभकर्म आत्यंतिकानुबंधापेक्ष अनुबंधसहित शुभकर्म प्रकृष्ट क० प्रधान प्रकृष्ट भावार्जितं क० शुभभावें उपार्ज्यु नियमफलदं क० प्रकृष्टत्वें करीनें नियमें फलनुं देणहार छै । सुप्रयुक्त इव महागद: एकांतकल्याण: सुखफलं क॰सुख छैं फल जेहनुं एहवो ते शुभकर्म थाय । अनुबंधइं शुभनुं प्रवर्त्तक थाय परम सुखनुं साधक ते कर्म पारंपर्यें निर्वाण सुखनुं साधक छै ।

अओ अपडिबंधमेअं असुहभावनिरोहेणं सुहभावबीयंति सुप्प-णिहाणं सम्मं पढिअव्वं सम्मं सोअव्वं अणुप्पेहिअव्वंति ।

यत एवं अतो क० ए कारण माटें प्रतिबंधरहित, निदानरहित, अशुभ भावना अनुबंधनें निरोधें करीनइं शुभभावनुं बीज इति कृत्वा, इंम चित्तमां जाणीनें, ए सूत्र सुप्रणिधान कहतां शुभप्रणिधानें सम्यक् प्रशांत(ता)त्माइं पठितव्यं कहतां भणवुं, सम्यक् प्रशांतात्माइं अन्वाख्यानविधि सांभलवुं, अनुप्रेक्षितव्यं कहतां अनुप्रेक्षाविषये करवुं परिभावनीयमित्यर्थ: ।

नमो नमिअनमिआणं परमगुरुवि( वी )अरागाणं नमो सेसनमुक्कारा-रिहाणं । जयओ( उ ) सव्वण्णुसासणं । परमसंबोहीए सुहिणो भवंतु जीवा सुहिणो भवंतु जीवा सुहिणो भवंतु जीवा ।

नमस्कार हो देवऋषिओयें नमित क॰ वंदित एहवाओनैं,परमगुरु एहवा वीतरागोनें, नमस्कार हो शेष आचार्यादिक गुणाधिक नमस्कार योग्य महात्माओनें । कुतीर्थनें अपोहें जयवंत वत्तों सर्वज्ञोनु शासन । वरबोधिलाभरूप परम संबोधियें मिथ्यात्वदोषनें नाशें प्रांणी सुखिआ थाओ प्रांणी सुखिआ थाओ प्रांणी सुखिआ थाओ ।

# इति पावपडिघायगुणबीजाहाणसुत्तं १ ॥

इति पापप्रतिघात-गुणबीजाधान नामे प्रथम सूत्र १ ॥

९

जायाए धम्मगुणपडिवत्तिसद्धाए भाविज्जा एएसिं सरूपं(वं) पयइसुंदरत्तं अणुग्ग(गा)मित्तं पयो(रो)वयारित्तं परमत्थहेउत्तं तहा दुरणुचरत्तं भंगे दारुणत्तं महामोहजणगत्तं भूओ दुल्लहत्तंति । एवं

जहासत्ति( त्ती )ए उचियविहाणेणं अच्चंतभावसारं पडिवज्जिज्जा । धर्मगुण-प्रतिपत्ति श्रद्धा, तार पछी तथाविध कर्म-क्षयोपशमें करी भावथी भावीयें ए धर्मगुणोनुं स्वरूप, जीव संक्लेश-विशुद्धियें, प्रकृतइं सुंदरपणुं, भवांतर वासनानुगमें करी अनुगामिपणुं,पीडादि निवृत्तियें परोपकारिपणुं, परम्परायें मोक्षसाधनपणा माटें परमार्थ हेतुपणुं, सदैवानस्या(भ्या)स माटें दुखें आचरवामां आवें ते दुरनुंचर दुरनुचरभाव ते दुरचरपणुं, भगवंतनी आज्ञाना खंडवाथी भंग थइं दारुणपा(प)णुं, धर्मदूषकपणै करी महामोहजनन शक्तिमंतपणुं,भूयो दुर्लभत्वं क० विपक्षानुबंधना जोरथी पुन:प्राप्ति-दुर्लभपणुं, एवं-उक्त प्रकारें शक्तिनें अनुरूप, उचित विधानें-शास्त्रोक्तविधियें हानि-आधिक्य परिहरी, अत्यंतभावें सार-मोटें प्रणिधानइं बलें पडिवजीयें धर्मगुणोनें, राभसिकवृत्तियें नही वर्जीजीयें, राभसिक प्रवृत्तिनुं विपाकें दारुणपणुं छै, माटें धर्मगुणमां प्रवृत्ति उपयोगयुक्त ज हीनता अधिकता बें दोष वर्जीनें करवी । ।

तं जहा थूलगपाणाइवायविरमणं थूलगमुसावायविरमणं थूलगअदत्तादाणविरमणं थूलगमेहुणविरमणं थूलगपरिग्गहवेरमणमिच्चाइ पडिवज्जिऊण पालणे जइज्जा ।

ते जिम-स्थूल प्राणातिपातनुं विरमण, स्थूल मृषावादनुं विरमण, स्थूल अदत्तादाननुं विरमण,स्थूल परिग्रह (मैथुन)नुं विरमण, स्थूल परिग्रहनुं विरमण इत्यादि; आदि शब्दथी दिग्भू(व्र)तादि उत्तरगुण ग्रहीयें, अंगीकार करीनें पालवानें विषे उद्यम करीयें ।

प्रथम उपन्यास प्राणातिपात विरमणादिकनो ते प्राप्ति एहोनी इंम ज छे ।

सयाणागाहगे सिआ सयाणाभावगे सिआ सयाणापरितंते सिआ । आणा हि मोहविसपरममंतो, जलं रोसा( दोसाइ )जलणस्स, कम्मवाहीति-गिच्छासत्थं, कप्पपायवो सिवफलस्स ।

अध्ययनश्रवर्णे करी सदा आज्ञानो ग्रहनार हुं थाउं, अनुप्रेक्षाथी साथें

सदा आज्ञानो भावक थाउं, अनुष्टाननें आश्रयी सदा आज्ञा परतंत्र थाउं, आज्ञा-जिनवचननां(वचन)मोह विषनो परममंत्र छें, मोहविषनुं अपहारें करी जल छइं द्वेषादि ज्वलननुं-द्वेषादि ज्वलननें शमाववें करी, कर्मरूप व्याधि तेहनुं चिकित्साशास्त्र छें - कर्मव्याधिक्षयना कारणपणा माटें, कल्पवृक्ष छें शिवरूप फलनो अवंध्यपणें साधकपणा माटें ।

वज्जिज्जा अधम्ममित्तजोगं, चिंतिज्जा इ (अ)भिणवपाविए गुणे, अणाइभवसंगए अ अगुणे, उदयां(ग्ग)सहकारित्तं अधम्ममित्ताणं, उभयलोगगरहिअत्तं, असुहजोगपरंपरं च ।

वर्ज्जीयइं अधर्ममित्रयोगं-अकल्याण मित्रसंबंधने, चिंतवीयें प्राणातिपात विरमणादिक अभिनव जे पाम्या गुण ते गुणनइं, सदैव-अविरतपणें अनादि भवसंगत जे अवगुण प्राणातिपातादिक तेहुंनें, च पुनरर्थे, उदग्र सहकारिपणुं चिंतवीयें-अवगुणनी वृद्धि करवामां तीव्र सहायकारिपणुं अधर्म्ममित्रोनुं-अकल्याणमित्रोनुं चिंतवीयें, तेंहुना पापनी अनुमति इहलोकगर्हितपणुं परलोकगर्हितपणुं चिंतवीयें, ए शेष अशुभ योग परम्पराने अकुशलानुबंधथी वधें ते अशुभयोगपरम्परानें चिंतवीयें ।

परिहरिज्जा सम्मं लोगविरुद्धं करुणापरजणाणं, न खिंसाविज्ज धम्मं, संकिलेसो खु एसा, परमबोहिबीअं अबोहिफलमप्पणोत्ति ।

परिहरीयें सम्यग्-सुभ परिणामें लोकविरुद्ध प्रतिं तदशुभाध्यसायादि निबंधनानि लोकविरुद्धानि परिहननें अधर्म ए भावनायें, लोकोपें धर्मनइं न खिसावीयै न निंदावीयै-न गर्हावीयें, अशुभ भावपणा माटें, ए धर्मनी खिंसा ते संक्लेश छइं, परं-उत्कृष्टुं अबोधिबीज छइं अबोधि फल थाय आत्मानें-पोतानें पण अबोधिकारण जननें थाय ते कारणें ।

एवमालोएज्जा-न खलु इत्तो परो अणत्थो, अंधत्तमेयं -संसाराडवीए, जणगमणिहवायाणं, अइदारुणं सरूवेणं, असुहाणुबंध-मच्चंतं ।

इम आलोइइ सूत्रानुसारइं-नथी निश्चयें ए अबोधि फलथी बीजो अनर्थ, तत्कारणभावाद्वा लोकविरुद्धत्वादिति, तद् दर्शननें अभावें अंधपणुं छे ए संसार अटवीनें विषइं उपजावणहारु, अनिष्ट-आपातनुं छइं नरकाद्युपपातकारणपणइं, संक्लेशप्रधानपणा माटें अति तीव्र स्वरूपें अशुभने जेथी थाय एहवऊ परम्परायें ऊग्र-घातकपणें अत्यंत, तथोक्तं- ''लोक: खल्वाधार:, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् । तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ॥''

सेविज्ज धम्ममित्ते विहाणेणं, अंधो विवाणुकद्व( ड्व)ए, वाहिए विव विज्जे, दरिद्दो विव ईसरे, भीउ विव महानायगे । न इउ सुंदरमन्नंति बहुमाणजुत्ते सिआ, आणाकंखी, आणापडिच्छगे, आणाअविराहगे, आणानिष्फायगेत्ती(त्ति) ।

सेवियइं धर्ममित्रोनें सत्प्रतिपत्त्यादि विधानें, अंध जिम खातांदिभयें अनुकर्षकर्व(र्तृ)नइं, व्याधिवंत जिम रोगभयें वैद्योनइं, दरिद्र जिम स्थितिहेतु पण ईश्वरोनइ, बीहवौ जिम आश्रयणीयपणें महासौच्य आतंकपणै, अत्यंत नथी ए धर्ममित्रनां सेवनथी सुंदर बीजुं इम बहुमान युक्त थाय, हृदयथी धर्ममित्र उपरें प्रेम ते बहुमान, आज्ञा वगर थयें आज्ञानो अभिलाषी, आज्ञाप्रदानकाले आज्ञानो प्रतिच्छक, आज्ञाना परिचय करतां-अभ्यासतां आज्ञानो अविराधक, तेहनें उचित विधानें आज्ञानो निष्पादक ।

पडिवण्णधम्मगुणारिहं च वहिज्जा गिह( हि )समुचिएसु गिहिसमायारेसु परिसुद्धाणुडाणे परिसुद्धमन( ण )किरिए परिसुद्धवाइकिरिए परिसुद्धकायकिरिए ।

प्रतिपन्न धर्मगुणनें योग्य पुरिषनें वली अनुवृत्तिइं वर्त्तीयै, गृहिनें समुचित योग्य एहवा गृहिओना समाचारोनइं विषइं, परिशुद्ध अनुष्टानोनें शास्त्रानुसारइं, परिशुद्ध मन:क्रियाओनइं शास्त्रानुसारइं, परिशुद्ध वचनक्रियाओनें शास्त्रानुसारइं, परिशुद्ध कायक्रियाओनें शास्त्रानुंसारइं ।

वज्जिज्जाणेगोवघायकारगं गरिहणिज्जं बहुकिलेसं आयइविराहगं समारंभं । न चिंतिज्जा परपीडं । न भाविज्जा दीणणयां ( दीणयं ) । न गच्छिज्जा हरिसं । न सेविज्जा वितहाभिनिवेसं । उचिअमणपवत्तगे सिआ ।

वर्जीयइं अनेक उपघातनुं कारक सामान्यें गर्हवा योग्य, प्रवृत्तिकालें बहुक्लेशदायक एहवुं, आयतिइं विराधक, परलोक-परलोकपीडाकारकनें अंगारकर्मादिरूप समारंभ न चिंतवीयइं, सामान्यें परपीडा प्रति न भावीयैं, कोय चीजनें अणमलवें दीणता प्रति न पांमीयैं, कोय इष्ट चीजनें मिलवें हर्ष प्रति न सेवीययैं, ''अतत्त्वाध्यवसायो वितथाभिनिवेश:'' वितथाभिनिवेश प्रतिइं किंतू वचनानुसारइं मननो प्रवर्त्तावनार थाय इम, इम वचनप्रवर्त्तक ।

न भासिज्जा अलियं न फरुसं न पेसुन्नं नाणिबद्धं हिअ मिअ-भासगे सिआ ।

न भाखीयइं अभ्याख्यानादिकनें, न भाखीयइ निष्ठुरवुर (छुर?), न भाखीयै पैशून्य, न भाखीयइ कथादि–अनिबद्ध, प्रतिसूत्रनीतिइं हितकर परिमित भाषानो भाषक थाय ।

एवं न हिंसिज्जा भूआणि, न गिण्हिज्ज अदत्तं, न निरिक्खिज्ज परदारं, न कुज्जा अणत्थदंडं, सुहकायजोगे सिआ ।

इंम न हिंसीइं पृथ्वियादिभूतोनइं, नही ग्रहियें थोडुं पण अदत्त प्रतिइं, नही रागथी परदार प्रति, न करीयइं अपध्यानाचरितादि अनर्थदंड प्रति, किंतु छ काययोग आगमनीतिइं शुभ जेहनौ एहवौ थाय ।

तहा लाहोचिअदाणे लाहोचिअभोगे लाहोचिअपरिवारे लाहोचिअ निहिकरे सिआ ।

तिम अष्टभागाद्यपेक्षा लाभोचितदानकर्त्ता, अष्टभागाद्यपेक्षायें लाभनें उचितभोगभोगी, चतुर्भागाद्यपेक्षायें लाभनें उचित परिवारधारक, चतुर्भागाद्यपेक्षायें लाभ-निधिनो कारक थाय ।

असंतावगे परिवारस्स, गुणकरे जहासत्ति, अणुकंपापरे, निम्ममे भावेण । एवं खु तप्पालणे वि धम्मो जहऽन्नपालणेत्ति । सव्वे जीवा पुढो पुढो, ममत्तं बंधकारणं ।

तथा असंतापक:-परिजननें परिवारनें असंतापक थाय, शुभ प्रणिधानइं करी यथाशक्तिं प्रति फलनिरपेक्षपणें करी, अनुकंपातत्पर छें, भवस्थितिनें आलोचवइं, ए० इम जीवोपकार थाय माटें अन्य पालननें विषें जिम धर्म तिम तत्पालननें विषें जीवा(व)विशेषें करी अन्यपालनें जिम धर्म तिम निज, सर्वजीव पृथक् छइं, ममत्वं ते बंधनुं कारण छइं - ''संसारांबुनिधौ सत्त्वा:, कर्मोर्मिपरिघटि(ट्टि)ता: । संयुज्यंते वियुज्यंते तत्र क: कस्य बांधव: ? ॥ तथा-अत्यावतेऽस्मिन् संसारे, भूयो जन्मनि जन्मनि । सत्त्वो नैवास्त्यसौ कश्चित् यो न बंधुरनेकधा ॥''

तहा तेसु तेसु समायारेसु सइसमणा( ण्णा )गए सिआ, अमुगेऽहं, अमुगकुले, अमुगसिस्से, अमुगधम्मद्वाणहिए, न मे तव्विराहणा, न मे त दारंभो, वुड्ढी ममेअस्स, एअमित्थ सारं, एअमायभूअं, एअं हिअं । असारमन्नं सव्वं विसेसओ अविहिगहणेणं । एवमाह तिलोगबंधू परमकारुणिगे सम्मं संबुद्धे भगवं अरिहंतेत्ति। एवं समालोचिअ तदविरुद्धेसु समायारेसु सम्मं वट्टिज्जा भावमंगलमेअं तन्निष्प(प्फ)त्तीए ।

तिम छे ते लोभरूपपणा माटें समाचारोंनें विषें – गृहिसमुचित समाचारोंनें विषें, स्मृतिसमन्वागत थाय-आभोगयुक्त:, अमुक देवदत्तादि नामा हुं इक्ष्वाद्यपेक्षायें अमुक कुल, धर्मथी अमुक शिष्य, तत्तदाचार्यापेक्षायें-अणुव्रताद्यपेक्षायें अमुक कुल, धर्मथी अमुक शिष्य, तत्तदाचार्यापेक्षायें-अणुव्रताद्यपेक्षायें अमुक धर्मस्थानें हुं स्थित छुं, न मुझनइं धर्मस्थाननी विराधना, न हो मुझनइं विराधनानो आरंभ, ए धर्मस्थाननी माहरइं वृद्धि होय, एतत्-ए अत्र-इहां धर्मस्थानं एतत्-ए आत्मभूत आनुगामुकपणा माटइं, एतत् सुंदर परिणामपणा माटें हितं-हितकरं । असार छइं बीजुं अर्थजातादि सर्व, विशेषथी अविधिइं ग्रहणें करी विपाकदारुणपणा माटइं । इम कहतो हवओ त्रिलोकबंधु, परमकरुणावंत तथाभव्यत्त्वनि जोगथी सम्यक् अनुत्तर बोधबीजथी संबुद्धे भगवांन् अरिहंत इति । इम समालोचन करीनें अधिकृत धर्मस्थानाविरोध एहवा जे समाचार, ते विचित्र समाचारोंनें विषें सम्यक् सूत्रनीतिइं वर्त्तीयइं । वीधिइ प्रवर्त्तन ए भावमंगल छै, अधिकृत समाचारनें नीपजवें ।

तहा जागरिज्ज धम्मजागरिआए-को मम कालो ? किमेअ (स्स) उचिअं ? । असारा विसया नियमगामिणो विरसावसाणा । भीसणो मच्चू सव्वाभावकारी अविन्नायागमणो अणिवारणिज्जो पुणो पुणोऽणुबंधी । धम्मो एअस्स ओसहं, एगंतविसुद्धो महापुरिससेविओ सव्वहिअकारी निरइआरो परमाणंदहेऊ ।

तथा तिम जागीयें भावनिद्राविरहइं धर्म्मजागरिकाइं करी। किओ वयोवस्थारूप माहरो काल? स्युं मने उचित- 'किमेतस्योचितं धर्माद्यनुष्ठानं' ? तुच्छ छैं शब्दादि विषय, निश्चयें जनारा छैं विरस छें अवसान जेहुनां- परिणामदारुणाः । महाभयजनन मृत्यु छैं सर्वना अभावनो [कर्ता]अदृस्य-स्वभावपणा माटें अविज्ञात छै आगमन जेनुं एहवो, करनार छैं तत्साध्यार्थक्रियाना अभाव माटइं, स्वजनादिबलें अनिवारणीय छै-निवारवा योग्य न - नही ते अनिवारणीय, अनेक योनि सावें (थें) करी पुनः पुनः वारंवार अनुबंधी छइ, धम्मो कहतां धर्म व्याधि समान जे ए मृत्यु तेहनुं औषध छइं, एकांतविशुद्ध निवृत्ति रूप छें, महापुरष ये तीर्थकरादिक तेहुंणें सेवित्त छइं, सर्व्वनें हितकारी छइं, मैत्र्यादिरूपपणा माटइं निरतिचार छें, यथागृहीत-परिपालनें करी परिमानंदनो हेतु छइं ।

नमो इमस्स धम्मस्स । नमो एअधम्मप्पगासगाणं । नमो एअधम्मपालगाणं। नमो एअधम्मपरूवगाणं । नमो एअधम्मपवज्जगाणं ।

नमस्कार हो एतस्मै-एहनें अनंतरोदितरूपधर्मनइं नमः । ए धर्मना प्रकाशक अरिहंतोनें नमस्कार हो । ए धर्मना पालनार यतीओनें नमस्कार हो । ए धर्मना प्ररूपक यतीओनइं नमस्कार हो । ए धर्मना पडिवजनार श्रावकादिक गुणिजीवोनइं ।

इच्छामि अहमिणं धम्मं पडिवज्जित्तिए सम्मं मणवयणकायजोगेहिं। होउ ममेअं कल्लाणं परमकल्लाणाणं जिणाणमणुभावओ ।

इच्छुं छुं हुं एहनें धर्मनइं प्रतिपत्तिविषय करवानें । सम्यक्, अनेन तु संपूर्णप्रतिपत्तिरूपं प्रणिधिविशेषमाह–मनोजोग–वचनजोग–कायजोगें करीनें । हो मुझनें ए कल्याण–अधिकृत धर्मप्रतिपत्तिरूप परम छें कल्याण जेहुनें एहवा तीर्थंकरोना महिमाथी–तीर्थकरानुग्रहइ ।

सुप्पणिहाणमेवं चिंतिज्जा पुणो पुणो। ए[य]धम्मजुत्ताणमव-वायकारी सिआ । पहाणं मोहच्छेअणमेअं । एवं विसुज्ज( ज्झ )माणे भावणाए कम्मापगमेणं उवेइ एअस्स जुग्गयं । तहा संसारविरत्ते संविग्गो भवइ अममे अपरोवतावी विसुद्धे विसुद्धमाणभावेत्ति । ।

शुभ प्रणिधांन इम चिंतवइं वारंवार । ए धर्मयुक्त यतीओनो अवपातकारी थाउं-आज्ञाकारीति भाव । प्रधानं-श्रेष्ठ: मोहनुं च्छेदन तदाज्ञाकारीपणुं, तन्मोहच्छे(द)ने योगनिषा(निश्रा?)गतयेति हृदयं । इम कुशलाभ्यासें विशुध्यमान ए धर्मनो अभ्यासी जा(जी)व उक्तरूपभावनायें कर्मनो अपगम जे नाश तद्रूप हेतुइं करीनें उपैति-पामें छैं जुग्गयं कहतां योग्यतानइं । तथा-तिम स्वकीय दोष भावनायें करी संसारथी विरक्त-संविग्न कहतां मोक्षार्थी थाय, ममतारहित, परने उपा(पता)प न करें ते अपरोपतापी-एहवौ थाय अपरोपतापी, 'विशुद्धाविशुध्यमानभावजाता:' विशुद्ध थाय, ग्रंथि प्रमुखनें भेदवइं करीनइं विशुध्यमान छें भाव जेहनो ते विशुध्यमानभाव शुभकंडकवृद्धिइं करी थाय ॥

> **साधुधम्मपरिभावणा सुत्तं ॥२॥** इति साधुधर्मपरिभावना सूत्रं ॥२॥

### $\star$

परिभाविए साहुधम्मे जहोदिअगुणे जइज्जा सम्ममेअं पडिवज्जित्तए अपरोवतावं । परोवतावो हि तप्पडिवत्तिविग्घं । अणुपाओ खु एसो । न खलु अकुसलारंभओ हिअं ।

'परिभाविते सति साधुधम्में' अनंतर सूत्रोदित विधिइं यथोदितगुण संसारथी विरक्त, संविग्न, अमम । हवें त्रीजा सूत्रनी व्याख्या कहीयै छै । बीजा सूत्र साथें त्रीजा सूत्रनौ आ संबंध-जे अनंतर सूत्रें धर्म्मगुणप्रतिपत्ति-श्रद्धा थयें थकें, साधकनें जे कर्त्तव्य ते कर्यें थकें, साधुधर्म परिभावित थयो । हवइं साधुधर्म परिभावित थयें जे अकर्त्तव्य ते कहै छइं । यत्न करी सम्यक् विधिइं ए धर्मनइं पडिवजीनइं परनें उपताप न उपजइं तिम अपरोपतापं यथा स्यात् तथा । परोपताप जे ते निश्चयइं धर्मप्रतिपत्तिना अंतराय छइं । धर्मप्रतिपत्ति करवा परोपताप ते अनुपाय छै निश्चयइं । ए परोपताप नही निश्चयइं अकुशलारंभथी आत्माने हित ।

अप्यडिबुद्धे कहिंचि पडिबोहिज्जा अम्मापिअरे । उभयलोगसफलं जीविअं, समुदायकडा कम्मा समुदायफलत्ति । एवं सुही( दी )हो अविओगो । अन्नहा एगरुक्खनिवासिसउणतुल्लामेअं । उद्दामो मच्चू पच्चासन्नो अ । दुल्लहं मणुअत्तं समुद्दपडिअरयणलाभतुल्लं । अइप्पभूआ अण्णे भवा दुक्खबहुला मोहंधयारी( रा ) अकुसलाणुबंधिणो अजुग्गा सुद्धधम्मस्स । जुग्गं च एअं पोअभूअं भवसमुद्दे, जुत्तं सकज्जे निउंजिउं संवरइइअच्छिद्दं नाणकण्णधारं तवपवणजवणं ।

अप्रतिबोध थर्के कथंचित कर्मना विचित्रपणाथी ''अकुशलारंभश्च

धर्मप्रतिपत्तावपि परोपतापः । न चान्यस्तत्र प्रायोऽयं संभवतीति संभविपरि-हारार्थमाह-अप्रतिबुद्धौ कथंचित्कर्मवैचित्र्यत: प्रतिबोधयेन्मातापितरौ । ननु(न त्)प्रायो महासत्त्वस्यैतावप्रतिबद्धौ भवत इति कथंचिदित्याह'' - प्रतिबोधियइं मातापितानें । इहलोक-परलोकरूप उभयलोकें सफल''उभयलोकसफलं जीवितं प्रशस्यत इति शेष: ।'' ''समुदायकृतानि कर्माणि समुदायफलानीत्यनेन भूयोपि योगाक्षेप: ।" समुदायइं कर्यां शुभ कर्म धर्मसंबंधियां ते समुदायें फलनां देनारा थाय । तथा चाह-एवं-ए रीतें समुदायें शुभकार्य करतां-समुदायें अनुभवतां सुदीर्घ अवियोग भवपरम्परायें सर्वनें आपणनें थाय । अन्यथा- इंम न करीयें तो एंक वृक्षना द(व)सनारा पक्षीगण तेहुनें समान ए चेष्टित छै । यथोक्तं-''वासवृक्षं समागम्य, विगच्छंति यथाण्डजा: । नियतं विप्रयोगांतस्तथा भूतसमागम: ॥१॥'' इत्यादि । एज अर्थ वली कहें छेः अनिवारितप्रसर छें मृत्यू-अल्पायूपणें करी नजीक छैं । च-पुनः संसारसमुद्रमां दुर्ल्लभ छैं मनुष्यपणुं, समुद्रमां पड्युं रत्न तेहनी प्राप्तिनइं तुल्य छइं, अतिदुरापमित्यर्थ: । अति-घणा अन्य भव छें मनुष्यपणा विना । पृथिवीकायादि संबंधे कायस्थितिइं रहतां मनष्यपणं किहांथी गयं फिरी मलें ए भावार्थ । यथोकुं(क्तं)-''असंखो-सप्पिणीओ, एगिदिआण य चउण्हं । ता चेव ओ अणंता, वणस्सतीए उ बोधव्वा ॥१॥ अभ्य(न्य)भव केहवा छै ? उत्कट छै असातवेदनीय जिहां एहवा छड़ं । मोहोदयनी तीव्रताइं मोहांधकार जिहां छड़ं । असच्चेष्टा हेतुपणैं अकुशल कर्मनो अनुबंध करावें एहवा-अयोग्य । चारित्र धर्मनइं योग्य वली ए मनुष्यपणुं संसारसमुद्रें तारकपणें करी पोत सरिखुं छैं । युक्त धर्मकार्यनें विषइं जोडवानइं आश्रवरोधइं करी ढांक्या छें प्राणाति पातादिक छिद्र निरंतर ज्ञानोपयोगिपणा माटे । ज्ञांन छें कर्णधार जिहां तपरूप पवनें जवनं कहतां वेगवंत ।

खणे[एस]दुल्लहे सव्वकज्जोवमाईए सिद्धिसाहगधम्मसाहगत्तेणं । उवादेआ य एसा जीवाणं । जण्णं (जं ण) इमीए जम्मो, न जरा, न मरणं, न इडविओगो, नाणिइसंपओगो, न खुहा, न पिवासा, न अन्नो कोइ दोसो, सव्वहा अपरतंतं जीवावत्थाणं असुभरागाइरहिअं संतं सिवं अव्वाबाहंति । विवरि( री )ओ अ संसारो इमीए अणवडी( डि)असहावो । इत्थ खलु सुही वि असुही, संतमस( सं )तं, सुविणुव्व सव्वमालमालंति । ता अलमित्थ पडिबंधेणं । करेह मे अणुग्गहं । उज्झमह एअं वुच्छि दित्तए । अहंपि तुम्हाणुमईए साहेमि एअं निव्विण्णो जम्ममरणेहिं । समिज( ज्झ )इ अ मे समीहिअं गुरुपभावेणं । एवं सेसेवि बोहिज्जा । तओ सममेएहिं सेविज्ज धम्मं । करिज्जोचिअकरणिज्जं निरासंसो उ सव्वदा । एअं परममुणिसासणं ।

क्षण एक दुर्ल्लभ छें,सर्व बीजा जे कार्य तेहोनी उपमाथी अतीत ए क्षण छइं, सिद्धिना साधनार जे धर्म तेहनुं साधकपणुं ए क्षणमां छे तेणैं करी आदरवायोग्य, च पुनरर्थे, ए सिद्धि जीवोनइं जे कारणें । न ए सिद्धि मानवीनें विषें प्रादुर्भावलक्षण (जन्म) नथी, वयोहांनि नथी, प्राणत्याग नथी, इष्टनो वियोग-इष्टना अभाव माटइं नथी, अनिष्टनो संप्रयोग-अनिष्टना अभाव माटें नथी, बुभुक्षा नथी, उदकेच्छा नथी, बीजो कोय शीतउष्णादि दोष [नथी] । सर्वथा स्वाधीन ए सिद्धिनें विषइं आत्मानुं रहेवुं, असुभ रागाइ रहिअं क॰ अशुभ एहवा जे रागादिक तेहुंणे रहित ए अवस्थान छइं । ''शांतं-शक्तितोपि क्रोधाद्यभावेन शांतं शिवं सकलाशिवा: व(य)त: नि:क्रियपणें करी अव्याबाध छडं। विपरीत छें.च पुनरर्थे, संसार, ए सिद्धिथी जन्मादिरूपपणा माटें ए सिद्धिथी संसार विपरीत छैं । सर्व उपद्रवनो आलय छैं । यथाह-''जरामरणदौर्गत्य-, व्याधयस्तावदासतां । मन्ये जन्मापि वीरस्य, भूयो भूय-स्त्रपाकरं ॥" अनवस्थित छे स्वभाव जेहनओ एवो संसार छें । संसारमां निश्चयइं सखी पण असुखी पर्यायथी, सत् पण असत् पर्यायथी, स्वप्ननी परें सर्व आलमाल छइं, आस्यानं(ना) अभावइं करी । तत् कारण-माटें पूर्ण संसारनें विषें प्रतिबंधे करी करो मुझनें अनुग्रह प्रतिं उद्यमवंत । तथा ओए संसारनइं विच्छेद करवानें हुं पण तुमारी अनुमतिइं साधुं संसारविच्छेदनें । खिन्न-उदासीन छुं जन्ममरणें करी । किमित्यत आह-जन्ममरणां(णा)भ्यां संसारगामिभ्यां । सिद्धि पामइं च-पुनः माहरुं समीहित-संसारव्यवच्छेदनरूप, गुरु-अर्हदादिक तेहुनें प्रभावें करी । ए रीतिइं भार्यादिक शेषनें पण बुजवीयें-भार्यादि(दी)नि शेषाण्यपि बोधयेदौचित्योपन्यासेन । तार पछी साथें-माता पित्रादि साथें सेवीयें चारित्र-धर्म्मनइं । ''तत: समं एभिर्मात्रापित्रादिभि: संवेत धर्म चारित्रलक्षणं ।" करीयें उचित करणीय प्रति इहलोक परलोक संबंधि आशंसायें रहितनु पुन: सर्वदा । ए वीतरागनुं शासन कहतां वचन छइं । अबुज्झमाणेसु अ कम्मपरिणईए विहिज्जा जहासत्तिं तदुवगरणं आओवायसुद्धं समईए । कयण्णुआ खु एसा । करुणा य धम्म-प्यहाणजणणी जणंमि । तओ अणुणा( ण्णा )ए पडिवज्जिज्ज धम्मं । अणबुझ्यें छतइं च-पुन: कर्मपरिणतिइं करी, करीयें शक्तिनें अनुसारइं तेहुनु उपकारी उपकरण अर्थजातादिक, कारणें कार्यनो उपचार करी अर्थजातादि उपकरण कहीयै छै । आयें उपायें शुद्ध स्वमतिइं करी । कृतज्ञपणुं छैं निश्चयें । एक करुणा च-पुन: धर्मनी प्रधान माता छें जननें विषें । तत: मातापितायें अनुज्ञात थका पडिवजीयें चारित्रधर्म प्रतिं ।

अण्णहा अणुवहे चेव उवहि( हा )जुत्ते सिआ । धम्माराहणं खु हिअं सव्वसत्ताणं । तहा तहेअं संपाडिज्जा । सव्वहा अपडिवज्जमाणे चइज्जा ते अद्वाणगिलाणोसहत्थचायनाएणं ।

इम करतां पण मातापितानी अनुज्ञा न थाय तारें, भार्याद्युपलक्षण मेतत्। भावथी कपटरहित ज कपटवंत थाय शासनोत्रतिनिमित्तमित्यर्थः। "निर्माय एवं(व) भावेन, मायावांस्तु भवेत् क्वचित् । पश्येत् स्वपरयोर्यत्र सानुबंधं हितोदयं ॥१॥" इंम धर्माराधन ज निश्चयें हितावह छें सर्व सत्त्वोनें। तिम तिम ज दुस्वप्नादिक कहणें करीनें धर्माराधन निपजावीयें । ए प्रकारें पण सर्व्वथा कहण न मानें मातापितानइं त्यजीयें । मातापिताने अस्थानें वनादिकें ग्लाननें औषधनें अर्थे त्याग ते दृष्टांते ।

से जहानामए केइ पुरिसे कहंचि कंतारगए अम्मापिइ समेए तप्पडिबद्धे वच्चिज्जा । तेसिं तत्थ नियमधाई पुरिसमित्तासज्झे संभवे ओसहे महायंके सिआ । तत्थ से पुरिसे तप्पडिबंधाओ एवमालोचिअ 'न भवंति एए नियमओ ओसहमंतरेण, ओसहभावे अ संसओ, काल सहाणि अ एं(ए)आणि', तहा संठविअ संठविअ तदोसहनिमित्तं सवित्तिनिमित्तं चयमाणे साहू । एस चाए आचाए, अचाए चेव चाए फलमित्थ पहाणं बुहाणं । धीरा एअदंसिणो । स ते उ(ओ)सह-संपायणेण जीवाविज्जा । संभवाओ पुरिसोचिअमेअं ।

ते दूष्टांत-जिम नाम कोइक पुरुष कथंचित् अटवीमां गयो मातापिताइं

समेत मातापितानें प्रतिबंधे प्रतिबद्ध जाय । मातापितानइं अटवीनें विषें नियमघाती, पुरुषमात्रइं असाध्य, संभवें छें औषध जेहनुं एहवो, तत्काल मारें जे रोग ते महातंक थाय । तिहां ते पुरुष मातापिताना प्रतिबंधथी इंम विचारीनइं 'न जीवइं मातापिता नियमइं औषध विना, औषध मलें वली संदेह-कदाचित् जीवइं, हुं औषध लेई आवुं एटलो काल सहें वली मातापिता' । ते प्रकारइं-वृत्त्याच्छादनादिना प्रकारेण सम्यक् रीतें थापीनइं मातापितानें, औषध निमित्तइं पोतानी आजीवीकनें अर्थइं त्यजतो सारो । ए त्याग अत्याग, संयोग फल छै एहनुं माटें । अत्याग ज वियोग-फलें फलें ते माटइं । फल इहां प्रधान छें पंडितोनें । धीर पुरुष क्रियाना फलना देखणहार छै । ते पुरुष मातापितानें औषधनें नीपजाववै करीनइं मातापितानइं जीवाडइं । औषध लावीनें करावे तो जीवें इंम संभवें छें तेथी धीर पुरुषनें उचित छें ते इंम अटवीमां त्यजवुं । एवं सुक्कपक्खिए महापुरिसे संसारकंतारपडिए अम्मापिइसंगए

एव सुम्रपायखए महापुरिस संसारफारिपाउए जन्मापइस्तर् धम्मपडिबद्धे विहरिज्जा । तेसिं तत्थ नियमविणासगे अपत्तबीजाइ-पुरिसमित्तासज्जे संभवंतसंमत्ताइओसहे मरणाइविवागे कम्मायंके सिआ । तत्थ से सुक्रपक्खिगपुरिसे धम्मपडिबंधाओ एवं समालोचिअ 'विणस्संति एए अवस्सं सम्मत्ताइओसहविरहेण, तस्स संपाडणे विभासा, कालसहाणि अ एआणी(णि) ववहारओ' । तहा संठविअ संठविअ इहलोगचिंताए तेसिं संमत्ताइओसहनिमित्तं विसिट्टगुरुमाइभावेण सवित्तिनिमित्तं च किच्चकरणेण चयमाणेसंजमपडिवत्ति(त्ती)ए ते साहुसिद्धीए । एस चाए अचाए, तत्तभावणाओ । अचाए चेव चाए, मिच्छाभावणाओ । तत्तफलमित्थ पहाणं परमत्थओ । धीरा एअदंसिणो आसन्नभव्वा । स त्ते (ते)सम्मत्ताइओसहसंपाडणेण जीवाविज्जा अच्चंतिअं अमरणाऽवंझबी-अजोगेणं । संभवाओ पुरिसोचिअमेअं । दुष्पडिआराणि अ अम्मापिईणि । एस धम्मो सयाणं । भगवं इत्थ नायं परिहरमाणे अकुसलाणुबंधि अम्मापिइसोगंति ।

ए दृष्टांत । इंम हवें आ अर्थोपनय कहै छैं- शुक्लपाक्षिक चरमावर्ती महापुरुष परीत्तसंसारी, यथोक्तं-संसाररूपकांतार जे अटवी तेहमां 'पडिए' कहतां पडयौ छतो, ''जस्स अवड्ढो पुग्गल-परियट्टो सेसओ य संसारो । सो

### डिसेम्बर २००७

सुक्रपक्खिओ खलु, अहिगे पुण कण्हपक्खीओ ॥१॥'' संसारकंतार पतितः सन् । मातापिताइं सहित उपलक्षणमेतत् भार्यादीनां । धर्में प्रतिबद्ध विहरइं । ते मातापितानें ते संसारकंतारमां निश्चयें विनाशकारी, अप्राप्त छें बीजादिक जेणें एहवो जे पुरुष मात्र तेणें असाध्य एहवो, संभवे छे सम्यक्त्वादिक औषध जेहनुं एहवओ, मरणादिक छैं विपाक जेहनो एहवो, कर्मनो ज आतंक कहतां सव्वोघाती रोग थाय । तिहां ए शुक्लपाक्षिक पुरुष धर्मप्रतिबंधथी-'धर्मप्रतिबंधाद्धेतो:' ए रीति विचारीनइं-'विनाश पामें मातापिता अवश्य सम्यक्त्वादि औषध विना, सम्यक्त्वादिक औषध नीपजाववामां विभाषा कहतां भजना, औषध मेलवुं एटलो काल टकैं एहवां ए मातापिता छैं व्यवहारथी जोतां- 'व्यवहारत: तथा जीवनं संभवेत्, निश्चयतस्तु न, यथोक्तं - आयुषि बहृपसर्गे, वाताहतसलिलबुद्बुदानित्यतरे(नित्ये) । उच्छस्य निःश्वसिति यः, सुप्तो वा यद्विबुध्यते तच्चित्रं ॥' तथा ते प्रकारें 'सौहित्यापादनं संस्थाप्य संस्थाप्य'- थापी थापीनइं इहलोकचिंताइं ते मातापितानें. सम्यक्त्वाद्यौषधनिमित्तें विशिष्टगुर्वादिभावइं-'विशिष्टगुर्वादिभावेन धर्मकथादिभावात्'पोतानी वृत्तिनें निमित्तइं च-पुनरर्थे, कृत्यनें करवें करीनें-'कृत्यकरणेन हेतुना-त्यजतो-त्यजनं', संयमनी प्रतिपत्तिइं मातापितानइं, 'संयमप्रतिपत्त्या धर्मशील:' सिद्धिनें विषें, ए त्याग अत्याग, तत्वभावनाथी, 'तद्धितप्रवृत्ते:'। अत्याग तेज त्याग, मिथ्याभावनाथी, 'तदहितप्रवृत्ते:'। तत्त्वफल जे ते इहां प्रधान छे बुधजनोनइं, परमार्थे-परमार्थेन आसन्नभय एहना देखणहारा आसन्नभव्य-बीजा नहीं, 'शुक्लपाक्षिक:', मातापितानें सम्यक्त्वाद्यौषधनें नीपजाववें करीनें जीवाडइं आत्यंतिकभावें कथमित्याह-'अमरणमरणावंध्यबीजयोगेन चरममरणावंध्यकारणसम्यकत्वादियोगेनेत्यर्थः' । नथी मरण जेहथी ते मरणनें अमरण-मरण कहीयें, ते अमरण-मरणनुं अवंध्यबीज जे सम्यक्त्वादि तेहनें योगइं संभवे छइं एक करवुं माटे पुरुषोचित छइं ए 'किमित्यत आह-संभवेत्येतदत एवाह संभवात् पुरुषोचितमेतद्यदुक्तेनैतत्त्याग इति' । दु:प्रतिकार छै- 'दु:प्रतिकारौ' माता-पिता इम जांणीनें 'मातापितरौ इति कृत्वा', ए धर्म्मं सत्पुरुषोनो 'सताम्' । भगवान् इहां-'महावीर एव अत्र' दूष्टांत 'ज्ञातं' परिहरतो-'परिहरन्' अकुशलानुबंधि तथाविध कर्मपरिणामें करी अकुशल कर्मनो अनुबंध करावें एहवो मातापितानो शोक ते प्रतें 'गर्भाभिग्रहप्रतिपत्त्या अकुशलानुबंधिनं तथा कर्मपरिणत्या मातुपितुशोकं प्रव्रज्याग्रहणोद्भवमिति' ।

उक्तं च-अह सत्तमंमि मासे, गब्भत्थो चेवभिग्गहं गिह्ने । णाहं समणो होहं, अम्मापियरे जियंतंमि ॥१॥'' प्रस्तुतं निगमनायाह-

एवमपरोवतावं सव्वहा गुरुसमीवे, पूइत्ता भगवंते वीअरागे साहू अ, तोसिऊण विहवोचिअं किवणाई, सुप्पउत्तावस्सए सुविसुद्धनिमित्ते समहिवासए विसुज्झमाणो महया पमोएणं सम्मं पव्वइज्जा लोअधम्मेहिंतो लोगुत्तरधम्मगमणेणं । एसा जिणाणमाणा महाकल्लाणत्ति न विराहियव्वा बुहेणं महाणत्थभयाओ सिद्धिकंखिणत्ति । पवज्जागहणविहिसुत्तं ३॥

'सर्वथा सम्यक् विधिविशेषमाह'-सर्वथा सुगुरुनें समीपें, अन्यत्र नहीं, 'सुगुरुसमीपे नान्यत्र' । पूजीनइं-पूजित्वा ज्ञानादिशक्तियुक्त भगवंतोनें- 'भगवत:' वीतराग कहतां जिन तेहोनें । साधूओनइं 'साधून्-यतीन्' तुष्ट करीनइं 'तोषित्वा'। विभवनें उचित- 'विभवोचितम्' कृपणादिकनइं 'दुःखितसत्त्वानित्यर्थः' । सप्रयक्त छैं आवश्यक जेणें एहवौ - 'सुप्रयुक्तावश्यक: समुचितनेपथ्यादिना, सुविशुद्धनिमित्त: प्रतियोगं सम्यक् अभिवासित: । गुरुइं गुरुंमंत्रइं करीनइं 'वासितो गुरुणा गुरुमंत्रेण' विशेषें परिणामादिकें विशुध्यमान । महोटें-महता प्रमोदें-लोकोत्तर प्रमोदें सम्यक् भाववंदनादि शुद्धि प्रव्रजइं-'सम्यक् भाववंदनादिशुद्ध्या प्रव्रजेत् । किमुक्तं भवति ? लोकधर्मेभ्यः लोकोत्तरधर्म-गमनेन प्रकर्षेण प्रव्नजेदित्यर्थ:' - लोक धर्म्मोथी लोकोत्तरधर्ममां गमनइं करी। ए वीतरागोनी आज्ञा छैं - 'एषा जिनानामाज्ञा-यदुतैवं प्रव्रजितव्यं, इयं च महाकल्याणेतिकृत्वा न विराधितव्या बुधेन नान्यथा कर्त्तव्येत्यर्थ: । कस्मादित्याह-महानर्थभयात् । नाज्ञाविराधनतोऽन्योऽनर्थः । अर्थवत्तदाराधना इत्यत एवाह-सिद्धिकांक्षिणा मुक्त्यर्थिनेति । न खल्वाज्ञाराधनातोऽन्यः सिद्धिपथ इति भावनीयं ।' ए महाकल्याण छइं इंम जाणीनइं न विराधवी-अन्यथा न करवी पंडितइं, आज्ञाभंगजनित महा अनर्थना भयथी, मोक्षना अभिलाषीयै । प्रव्रज्या ग्रहणविधि सुत्रं समाप्तं । तत्त्वत: प्रव्रज्याग्रहणविधि-प्रव्रज्याग्रहणविध्यर्थ सूचकं सूत्रं समाप्तं । पंचसूत्रकव्याख्यायां तृतीयसूत्रव्याख्या समाप्ता ॥३॥

सांप्रतं चतुर्थसूत्रव्याख्या प्रारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । अनंतरसूत्रे साधुधर्मे परिभाविते यत्कर्त्तव्यं तदुक्तं तच्च विधिना प्रव्रज्या ग्राह्येतेते(त्ये)तत् ।

 $\star$ 

अस्याः चर्यामभिधातुमाह-''स एवमभिपव्वइए समाणे सुविहिभावतो किरियाफलेण जुज्जतीत्यादि'' । स प्रस्तुतो मुमुक्षुः, एवमुक्तेन विधिना अभिप्रव्रजितः सन् सुविधिभावतः कारणात्, क्रियाफलेन युज्यते । सम्यक् क्रियात्वादधिकृतक्रियायाः । स एव विशिष्यते-विशुद्धचरणो महासत्त्वः। यत एवंभूतः अतो न विपर्ययमेति मिथ्याज्ञानरूपं । एतदभावे-विपर्ययाभावो(वे)ऽभिप्रेतसिद्धिः सामान्यैव कुत इत्याह-उपायप्रवृत्तेः । इयमेव कुत इत्याह-नाविपर्यस्तो उपाये प्रवर्तते । इयमेवाविपर्यस्तस्याविपर्यस्तता यदुतोपाये प्रवृत्तिरन्यथा तस्मिन्नेव विपर्ययः । एवमपि किमित्याह-उपायश्चोपेयसाधको नियमेन कारणं कार्याव्यभिचारीत्यर्थः । अतज्जननस्वभावस्य तत्कारणत्वायोगादति प्रसंगात् । एतदेवाह-तत्स्वतत्त्वत्याग एवोपायः स्वतत्त्वत्याग एवाऽन्यथा-स्वमुपेयमसाध्यतः । कृतः?इहातिप्रसंगात्, तदसाधकत्वाविशेषेणानुपायस्याप्युपायत्वप्रसंगात् । न चैवं व्यवहारोच्छेद आशंकनीय इत्यर्थः । निश्चयमतमेतदिति सूक्ष्मबुद्धिगम्यं । सांप्रतं चतुर्थसूत्र-व्याख्या॥

स एवमभिपव्वइए समाणे सुविहिभावा( व )ओ किरिआफलेण जुज्जइ, विसुद्धव( च )रणे महासत्ते, न विवज्जयमेइ । एअअभावेऽ-भिष्पेअसिद्धी उवायपवित्ति( त्ती )ओ । नाविवज्जत्थोऽणुवाए पयद्वइ । उवाओ अ उवेअसाहगो निअमेण । तस्सतत्तच्चाओ अण्णहा अइप्पसंगाओ । निच्छ्यमयमेअं ।

ते ए रीतइं अभिप्रव्रजित छतो, सुविधिना भावथी क्रियाना फलनी साथें जोडीइं, विशुद्ध छैं चरण जेहनु, महासत्व, न विपर्ययनें पांमइं । ए विपर्ययनें अभावें इष्टकार्यनी सिद्धि थाय उपाय-प्रवृत्तिथी । नही अविपर्यस्त पुरुष अनुपायें प्रवृत्तइं । कारण च-पुनः कार्यनो साधनार अव्यभिचारें छें। कारणनो कारणपणानो योग न ठरें अन्यथा-कार्य न करें तो, अतिप्रसंग थाय। निश्चयनुं मत छइं ।

से समलिडुकंचणे समसत्तुमित्ते नियत्तग्गहदुक्खे पसमसुहसमेए सम्मं सिक्खमा[इ]अइ, गुरुकुलवासी, गुरुपडिबद्धे, विणीए, भूअत्थदरिसी, न इउ हिअतत्तं( रं )ति मन्नइ, सुस्सूसाईगुणजुत्ते तत्ताभिनिवेसा विहिपरे परममंतोत्ति अहिज्जइ सुत्तं बद्धलक्खे आसंसाविप्पमुक्के आययडी।

### स त्त(त)मवेइ सव्वहा । तओ सम्मं निउंजइ ।

ए सूक्ष्मबुद्धिगम्य ते समान छें पाषाण कनक जेहनें एहवउं, समान छें शत्रु मित्र जेहनइं, मट्युं छें कदाग्रहनुं दुख जेहनइं एहवउ, प्रसमसुखें सहित, सम्यक् ग्रहणासेवनरूप शिक्षानें ग्रहइं, गुरुकुलवासी-गुरुकुलमां निमग्न, चित्तवृत्तिइं गुरुप्रतिंबद्ध, गुरुबहुमानथी, विनीत बाह्य विनयइं, भूतार्थदर्शी नथी गुरुवासथी हिततत्त्व इंम मांनइं, सुश्रूषादिक गुणइं संयुक्त,तत्त्वनें विषें अभिनिवेश छइं जेहनइं, विधिमां तत्पर, रागादि विषनो परममंत्र इंम जांणी पाठें श्रवणें करी भणइं सूत्र प्रतिं, अनुष्टेय प्रतिं बांध्युं छें लक्ष्य जेणइं,आसंसाइं विप्रमुक्त, मोक्षार्थी, एहवो ते सूत्र प्रतिं जाणें यथातथपणइं, जांणवाथी सम्यक् सूत्रनें आत्मार्थ साधनपणें जोडें ।

एअं धीराण सासणं । अण्णहा अणिओगो, अविहिगहिअमंत-नाएणं । अणाराहणाए न किंचि, तदणारंभाओ धुवं । इत्थं मग्गदेसणाए दुक्खं, अवधीरणा, अप्पडिवत्ती । नेवमहीअमहीअं, अवगमविरहेणं । न एसा मग्गगामिणो । विराहणा अणत्थमुहा, अत्थहेऊ, तस्सारंभाओ धुवं । इत्थ मग्गदेसणाए अणभिनिवेसो, पडिवत्तिमित्तं, किरिआरंभो । एवंपि अहि( ही )अं अहि( ही )अं, अवगमलेसजोगओ ।

ए महावीरादिक धीर पुरुषोनुं शिक्षाकरण छैं । अविधिइं अध्ययन करवें विपर्यय, अविधिगृहीत मंत्रनें दृष्टांतइं, अनाराधनाइं करी इष्ट वा अनिष्ट फल नही, परमार्थथी साधनना अनारंभपणा माटें निश्चयें । अनाराधनानें विषइं लिंग देखाडैं छैं – तात्त्विक देशना सांभलतां अना-रा(अनाराधना) कर्मानइं मनाग् लघुतर कर्मानें अद(व)हीलना थाइं, दुख न थाय तेथीयें लघुकर्मानें अप्रतिपत्ति थाय, अवधीरणा न थाय, नही इंम भण्युं भण्युं कहीयें सम्यक् – अवबोध विना, नही ए विराधना मार्गगामि जीवनें, एकांते अनाराधना अध्ययननी उन्मादादिकें अनर्थमुखा, गुरुतर दोषनी अपेक्षायें अर्थ-हेतु छें, मोक्षगमनना ज आरंभथी निश्चयें, ए विराधना छतां तात्त्विक देशनामां सांभलतां अनभिनिवेश होय, हेयोपादेय आश्री सम्यग् विराधकनें प्रतिपत्तिमात्र होय, अनभिनिवेश थाय अल्पतर विराधकनें, क्रियारंभ थाय प्रतिपत्तिमात्र नही, इंम पण विराध[क]नें अधीत सूत्र अधीत कहीयें भावथी, स्यां माटें, सम्यग् अवबोधलेशनें योगें करीनइं ।

अयं सबीओ नियमेण । मग्गगामिणो खु एसा अवायबहुलस्स । निरवाए जहोदिए सुत्तुत्तकारी हवइ पवयणमाइसंगए पंचसमिए तिगुत्ते । अणत्थपरे एअच्चाए अविअत्तस्स, सिसुजणणीचायनाएणं । विअत्ते इत्थ केवली एअफलभूए । सम्ममेअं विआणइ दुविहाए परिणा( ण्णा )ए ।

ए विराधक सम्यग्दर्शनादि युक्त नियमें,प्राप्तबीज पुरुषनें निश्चयें विराधना निरुपक्रम क्लिष्ट कर्मवंतनइं, निरपाय मार्गगामी सूत्रोक्तकारी थाय. अष्टप्रवचनमाताइं सहित सामान्यइं विशेषें पंचसमितियें समित त्रिण गुप्तिइं गुप्त, अनर्थ उपजाववामां तत्पर छैं प्रवचनमातानो त्याग साधकनइं भाव-बालनइं । कोण दृष्टांतें ? बालनें मातानो त्याग ते उदाहरणइं । ते बाल मातानें त्यजवें मरइं, तिम साधक चारित्र-प्राण-क्षरणें करी विनसैं । व्यक्त इहां भाव चिंतायैं चिंतवतां सर्वज्ञ प्रवचनमातृफलभूत, सम्यक् भावपरिणतिइं अनंतर कथित जाणइं बोधमात्ररूप ज्ञपरिज्ञायें, तद्-गर्भ क्रियारूप प्रत्याख्यान-परिज्ञाइं । तहा आसासपयासदीवं संदीणाअधिराइभेअं । असंदीण-

थिरत्थमुज्जमइ । जहासत्तिमसंभंते अणूसगे, असंसत्तजोगाराहए भवइ । उत्तरुत्तरजोगसिद्धीए मुच्चइ पावकम्मुणत्ति विसुज्झमाणे आभवं भावकिरिअमाराहेइ । पसमसुहमणुहवइ अपीडिए संजमतवकिरिआए, अव्वहिए परिसहोवसग्गेहिं, वाहिअसुकिरिआनाएणं ।

तथा आश्वास-प्रकाश-द्वीपनें अथवा आश्वास-प्रकाश-दीपनें सम्यक् जांणइं । इहां भवसमुद्रनें विषें आश्वासद्वीप, मोहांधकार निचित दुःखगहननें विषें प्रकाशदीप, एक प्लवनवान् द्वीप एक स्थिर दीप, एक अस्थिर अप्लवनवाननेंऽर्थें स्थिरनें अर्थें उद्यम करें सूत्रनीति, शक्तिनें अनुसारें, भ्रांतिरहित, उत्सुकताइं रहित, असंसक्तयोगनो आराधक-निःसपत्न श्रमणपणाना व्यापारनो कर्त्ता थाय, उत्तरोत्तर धर्मव्यापारनी सिद्धिइं, मुंकाइं ते ते गुणनु प्रतिबंधक जे पाप कर्म तेणें । इंम विशुध्यमान छतौ भव सूधी निर्वाणसाधक क्रियानें नीपजावें । ए यथासंख्यें मनुष्यनें विषें क्षयोपशमिक चारित्ररूप, क्षायिक चारित्ररूप, क्षायोपशमिक ज्ञानरूप बें ठेकाणै, पेहलो अक्षेपें इष्ट-सिद्धिनें अर्थें थाय सप्रत्यपायपणा माटें, बीजौ तौ सिद्धनें (नीपजावे), तात्त्विक प्रशमसुख प्रतिं अनुभवें, अणपीड्यौ आश्रवनिरोध अनशनादिरूप संयमतपक्रियायें अव्यथित थकौ, क्षुत् दिव्यादिक परीषहोपसर्गइं करीने,रोगवंतने शोभन क्रिया ते उदाहरणइं।

से जहानामए केइ महावाहिगहिए अणुहूअतव्वेअणे विण्णाया सरूवेणं, निव्विण्णे तत्तओ, सुविज्जवयणेण सम्मं तमवगच्छिअ जहाविहाणओ पवण्णो सुकिरिअं, निरुद्धजहिच्छाचारो, तुच्छपत्थभोई मुच्चमाणे वाहिणा निअत्तमाणवेअणे समुवलब्भारोगं पवडमाणतब्भावे तल्लाभनिव्वुइणे तप्पडिबंधाओ सिराखाराइभो( जो )गेवि वाहि समारुग्गविणाणेणं इडनिष्फत्तीओ अणाकुलभावयाए किरिओवओगेण, अपीडिए, अव्वहिए, सुहलेस्साए वड्डइ, विज्जं च बहु मन्नइ।

ते-जिम, आमंत्रणे । कोइक सत्त्व महाव्याधिइं गृहीत एहवौ, अनुभवी छें व्याधिनी वेदना जेणें एहवौ, विशेषे जांण\* वेदनानो स्वरूपें, व्याधि वेदनायें उदास तत्वथी, सुवैद्य वचनें करी अविपरीतपणें व्याधिनें जांणिनें, देवता पूजादिलक्षण यथाविधानें प्रपन्न परिपाचनादिरूप शुभक्रिया प्रतिं, प्रत्यपायना भयथी निरुद्ध छें यथेच्छाइं प्रवर्त्तन जेणइं एहवो छतो, व्याधिना अनुगुणपणाथी तुच्छ पथ्यभोजननो करणहार, ए प्रकारें मुंकातौ स्वासादिकनें जवें व्याधिइं, निवर्त्तमान कहतां वलमान छें व्याधिनी वेदना जेहनें एहवौ कंडू प्रमुखना अभावथी, सदरूपता पामवाथी नीरोगपणुं पामीनइं, प्रकर्षे वधतौ छैं आरोग्यनो अभिलाष जेहनें एहवो, आरोग्यलाभनी निष्पत्तिइं, निरोग्यपणाना प्रतीबंधथी आरोग्यप्रतिबंधाद्धेतो:, शिरावेध-क्षारपातादिकनें थवें पण व्याधिनुं सम्यग् जे आरोग्य तेहनइं ज्ञानइं करी, आरोग्यनी निष्पत्तिध्री, निबंधनना अभावथी अनाकुल-भावपणें करीनें क्रियानें विषें उपयोग जे बोध तेणें, अपीडित, व्यथारहित निर्वातस्थान आसन औषधपानादिकें करीनें, प्रशस्तभावरूप शुभलेश्यायें वद्धिनें पामइं, वैद्यनें च पनः महाऽपाय निवारवानो ए माहरें हेत् ।

एवं कम्मवाहिंगहिए अणुभूअजम्माइवेअणे, विण्णाया दुक्खरूवेणं, निव्विण्णे तत्तओ तओ, सुगुरुवयणेण अणुडाणाइणा तमवगच्छिअ पुव्वुत्तविहाणओ पव्वण्णे सुकिरिअं पव्वज्जं, निरुद्ध-पमायायारे, असारसुद्धभोई, मुच्चमाणे कम्मवाहिणा, निअत्तमाणिड-<del>\* कंडूगृहीत कंडूयणकारीनी परिं विपर्यस्त नही । एवं टि. छे प्रतिमध्ये ॥</del> विओगाइवेअणे, समुवलब्भ चरणारोग्गं पवहुमाणसुहभावे, तल्लाभनिव्वुईए तप्पडिबंधविसेसओ परिसहोवसग्गभावेवि तस्स( तत्त )संवेअणाओ कुसलासयवुद्धीओ थिरासयत्तेण धम्मोवओगाओ सया थिमिए तेउल्लेसाए वहुइ, गुरुं च बहु मन्नइ जहोचिअं असंगपडिवत्ति( त्ती )ए, निसग्ग-पवित्त( त्ति )भावेण एसा गुरुई विआहिआ भावसारा विसेसओ भगवंतबहुमाणेण । जो मं पडिमन्नइ सो गुरुं ति तदाणा । अन्नहा किरिआ अकिरिआ कुलडानारीकिरिआसमा, गरहिआ तत्तवेअ( ई )णं अफल-जोगओ । विसण( ण्ण )तित्तीफलमित्थ नायं । आवट्टे खु तप्फलं असुहाणुबंधं( धे ) ।

ए सम्यग् ज्ञानथी बहमानें मानें इंम, कर्मव्याधिइं गीहीत प्राणी,अनुभवी छें जन्मजरामरणादिकनी वेदना जेणें एहवो, विशेषें ज्ञाता कहतां जांग दुखरूपें जन्मादिक वेदनानो, तिहां ज आसक्तादिकें विपर्यस्त नही उदासीन परमार्थथी जन्मादिवेदनाथी, सुगुरुनें वचनें अनुष्टानादिकइं करीनइं सुगुरु प्रतें अनें कर्मव्याधि प्रति जांणीनें, तृतीय सूत्रमां कह्युं जे विधानते विधानें पडिवज्यौ छतौ शुभ छै किया जेहमां एहवी प्रवज्या प्रति, निरुद्ध छइं प्रमादनुं आचरण जेणें यदच्छाइं करी, संयमने अनुगुणपणें अर(असार)शुद्ध भोजननो भोगी, ए प्रकारें मुकातो कर्मरूप व्याधिइं, तिम मोहनइं नाशें करी वलमान छें इष्टवियोगादिक वेदना जेहनइं एहवो, सम्यग् पामीनइं सदरूप तें पामवें चरणधर्मरूप आरोग्यनें प्रकर्षे वधतो छे शुभ चरणारोग्यनो भाव जेहनइं एहवो, चरणरूप आरोग्यना लाभनी निष्पत्तिइं, चरणरूप आरोग्यनो जे प्रतिबंध तेह बहुतर कर्म-व्याधिना विकारनें नाशें तेहना विशेषथी, स्वाभाविक कारणथी क्षुदादि-परीषहे दिव्यादि उपसर्ग-तेहोनें योगें पण, सम्यग् ज्ञानथी, क्षयोपशमिकभावलक्षण कुसलाशयनी वृद्धिः, स्थिरचित्तपणें करी कर्त्तव्यताना बोधथी, सदा भावद्वंद्वे रहित प्रशांत, शुभ प्रभावरूप तेजोलेश्यायें वृद्धिनें अनुभवें,भीद(भव)वैद्यनें वली बहुमानें मानइं, उचितपणें-यथौचित्येन स्नेहरहित भावनी प्रतिपत्तइं, सांसिद्धिक प्रवृत्तिभावें करीनइं असंगप्रतिपत्ती गर्वी ते मोटी वखाणी छें भगवंतें-व्याख्याता. भावें सारऔदइकभावनें विरहें विसेषथी असंगप्रतिपत्ति, इहां युक्त्यंतर कहे छें -अचिंताचिंतामणिकल्प तीर्थंकरथी प्रतिबंधइं, जे मुझनें भावथी प्रतिमन्त्य(न्य)त

कहतां मानइ ते गु(रु)नें पणइं, भगवंतनी आज्ञा । इत्थं तत्त्वं व्यवस्थितं, गुरुबहुमान विना प्रत्युपेक्षणादिरूप क्रिया पण अक्रिया-सत्क्रियाथी अन्या, केहवी ? दु:शील वनितानी उपवासादिक क्रियाने सरखी क्रिया, ततःकिं ? गरहितनइं पंडितोनइ, स्या माटइं मोक्षरूप इष्ट फलथी अन्य जे सांसारिक फल तेहनी योग माटे, एज स्पष्ट करतो कहें छें- मि(वि)ष-मिश्र अत्रथी तृप्ति तेहनुं फल ते, माषतुष इहां दृष्टांत छें । थोडुं विपार्के भोग देवें आवर्त्त-संसार ते ज दारुण, क्षयोपशमथी माषतुषनी परें, यथोक्तं-''विवेकशुभभावपरिणामा वचन-गुरु-तदभावेषु यमिनामिति'' । विराधनारूप विषजनित को हवो छइं ?, आवर्त्त, तिम तिम विराधनानें उत्कर्षें अशुभनो छें अनुबंध जेहथी एहवो छें। आयवो( ओ ) गुरुबहुमाणो अवंझकारणत्तेण । अओ परमगुरुसंजोगो । तओ सिद्धी असंसयं । एसेह सहोदए, पगिइतयणुबंधे,

भववाहितेगिच्छी । न इओ सुंदरं परं । उवमा इत्थ न विज्जई ।

इम सफल गुरुनुं अबहुमान कहीनें गुरुनुं बहुमान कहें छें : आयत कहत्तां मोक्ष, गुरुनुं बहुमान-गुरु-बहुमान ज मोक्ष ए अर्थ, अवंध्यकारणपणें करीनें मोक्ष प्रतिं अप्रतिबद्ध सम्यक् हेतुपणें करीनें । एज कहइं छइं-गुरु बहुमानथी परमगुरु तीर्थंकरनो संयोग । ते तिर्थंकरसंयोगथी मुक्ति एकांतइं । गुरुबहुमान, इहां कारणें कार्यना उपचारथी, जिम आयु थी (घी) तिम गुरुबहुमान शुभोदय कह्यो,शुभोदयना पुष्टकारण माटइं । जिम आयु: स्थितिनुं पुष्ट कारण माटें घृत आयु, तिम ए दृष्टांत-दार्ष्टांतिक-भावना । वली केहवो छें गुरु बहुमान ? तिम तिम आराधनानइं उत्कर्षें करीनइं प्रधान शुभोदयनो अनुबंध छै जेहथी एहवौ, संसार-व्याधिनो चिकित्सक गुरुबहुमान ज, हेतुफ्लभावथी नथी गुरुबहुमानथी सारुं, उपमा गुरुबहुमाननै विषइं नथी विद्यमान ।

स एवंपण्णे एवंभावे एवंपरिणामे अप्पडिवडिए वड्टमाणे तेउक्रेसाए दुवालसमासिएणं परिआएणं अइक्रमई सव्वदेवतेउक्रेसं । एवमाह महामुणी । तओ सुक्के सुक्काभिजाई भवइ ।

प्रव्रजित, विमल विवेकथी, एम छें प्रज्ञा जेहनी, प्रकृतिइं एहवो छै सोच जेहनो, सामान्यें गुरुनेंऽभावें पण एहवो छें परिणाम जेहनो, इंम अप्रतिपतित छतौ, वर्द्धमान कहतां वधतो, नियोगथी शुभ प्रभावरूप तेजोलेश्यायैं बारमासी पर्यायइं, एटला कालनी प्रव्रज्यायें अतिक्रमइं सर्व देवनी सामान्यें शुभ प्रभावरूप तेजोलेश्या प्रतिं, इंम कहें छइं भगवान महावीर । ''तत: नामाभित्रवृत्त: अमत्सरी कृतज्ञ: सदारंभी हितानुबंध'' एहवो ते शुक्ल नामाभिन्नवृत्तत्वादि– प्रधांन ते शुक्लाभिजाती एहवो थाय ।

पायं छिण्णकम्माणुबंधो । खवइ लोगसन्नं । पडिसोअगामी, अणुसोअनिवित्ते, सया सुहजोगे, एस जोगी वियाहिए । एस आराहगे सामण्णस्स । जहागहिअपइण्णे सव्वोवहासुद्धे संधइ सुद्धगं भवं सम्मं अभवसाहगं लोगकिरिआसुरूवाइकप्पं । तओ ता संपुण्णा पाउणइ अविगलहेउभावओ असंकिलिडसुहरूवा अपरोवताविणीओ सुंदरा अणुबंधेणं न य अण्णा संपुण्णा, तत्तखंडणेणं ।

प्रायच्छिन (प्राय: छिन्न) छे कर्मानुबंध जेणें एहवौ ते वेद्यने वेदतो, प्रायोग्रहण कर्मशक्तिना अचित्यपणा माटें, कदाचित् बो(बां)धें पण तथाविध अन्य कर्मने न बंधइं, भगवद्वचनथी प्रतिकूल प्रभूत-संसाराभिनंदित सत्त्वक्रिया प्रीतिरूप लोकसंज्ञाने खपावैं, प्रतिश्रोतोगामी क॰ साहमा पूरनो चालनार लोकाचारप्रवाह नदी प्रतिं, लोकाचारप्रवाह-नदी आश्रीनेंज अनुश्रोतोनिवृत्त, अनुश्रोतोनिवृत्तिना अभ्यासथी ज सदा शुभ व्यापारें संगत एहवो, ए पुरुष भगवंतें योगी व्याख्यात कहतां वखाण्यो । यथोक्तं-श्रामण्य एहवो जे जोगी ते श्रमणभावनो आराधक निस्पादक न्याय छै ए, यथोक्तं-''अणुसोयपट्ठीए (पइट्ठिए) बहजणंमि पडिसोअलद्धलक्खेणं । पडिसोयमेव अप्पा दायव्वो होउ कामेणं ॥१॥ अणुसोयसुहो लोगो, पडिसोओ आसवो सुविहियाणं । अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स णिप्पेणं'' ॥२॥ जथागृहित-प्रतिज्ञनें सम्यक्त्व प्रवृत्ति थकैं धुरथी मांडी, सर्वोपधाशुद्ध होइं ए प्रकारें निरतिचार, माटइं संधत्ते क० जोडें सुद्धभव-जनमविसेसलक्षण प्रतें, सम्यक् प्रकारें सत्क्रिया करवें करी मोक्ष साधक, ''सम्यक्त्वज्ञानचारित्रयोग: सद्योग उच्यते । एतद्योगाद्वियोगी स्यात्, परमब्रह्मसाधक: ॥'' दृष्टांत कहें छइं-भोगक्रियानें सुरूपादिक तुल्य रूपादिक रहितनें भोगक्रिया सम्यक् न होइ । यथोक्तं-''रूपं वयो वैचक्षण्य-सौभाग्य-माधुर्यैश्वर्याणि भोगसाधनमिति।'' ते सुरूपादितुल्य भव थकी संपूर्ण भोगक्रिया पामें, अविकल कारण थकी, संक्लेस रहित सुखरूपा भोगक्रिया सुन्यताभावें, परनें संतापनी अणकरनारी, विचक्षणादिभावें अनुबंधें करी अत्यंत सुंदर-भली, उक्त लक्षण भोगक्रिया थकी अन्य भोगक्रिया संपूर्ण्णं नथी, स्या माटें ? संक्लेशादिकथी, उभय लोकनी अपेक्षायें भोगक्रिया स्वरूप खंडवे करी, इति परमार्थ: ।

एअं नाणंति वुच्चइ । एयंमि सुहयोगसिद्धी उचिय पडिवत्ति-पहाणा । इत्थ भावो पवत्तगो । पायं विग्घो न विज्जई निरनु( णु )बंधा सुहकम्मभावेणं । अक्खित्ता ओ इमे जोगा भावाराहणाओ तहा, तओ सम्मं पवत्तए, निष्फायइ अणाउले । एवं किरिआ सुकिरिआ एगंतनिकलंका निक्कलं[क]त्थसाहिआ, तहा सुहा सुहाणुबंधा उत्तरुत्तर-जोगसिद्धि(द्धी)ए ।

ए ग्यांन एहवुं दृष्ट वस्तु तत्त्वनुं निरूपक कहियें, ए ग्यांन छतें सुभ व्यापारनी निष्पति होइं, संज्ञान आलोचनें करी ते ते अनुबंधना देखवाथी योग्य प्रतिपत्तियें करी प्रधान, प्रस्तुत प्रवर्त्तिनें विषे भाव ते सदंतःकरण-लक्ष प्रवर्त्तक छे, मोहे नही, प्रायें अधिकृत प्रवर्त्तिनें विषे भला उपाय जोग थकी विघ्न न होइं असुभकर्मभावें, निरनुबंध सुभकर्मनें सानुबंध सम्यक् प्रव्रज्या भोग थकी प्रवर्त्ति होइं, आक्षिप्त क० अंगिकार कर्या ए जोग क० भली प्रवज्याना व्यापार, भाव आराधना थकी जन्मांतर तद(द्)बहुमानादि प्रकारें करी, ते प्रवर्ज्या व्यापार थकी सम्यक् वर्त्ते नियम, निष्पादिकपणें करी अनाकुल थको इष्टनिष्पादन करें, ए उक्त प्रकारें क्रिया ते सुक्रिया होइं, सम्यक् ज्ञान थकें उचित-प्रारिंभि, एकांतइं कलंकरहित निरतिचारपणें करी, निकलंक कार्य जे मुख्य तेहनी साधनारी, तथा सुभ अनें सुभ अनुबंध छें जेहनो एहवी, अव्यवच्छेदें करी उत्तरोत्तर जोगसिद्धियें करी ।

तओ से साहड़ परं परत्थं सम्मं तक्कसले सया तेर्हि तेर्हि पगारेहिं साणुबंधं, महोदए बीजबीजादिडावणेण, कत्तिविरिआइजुत्ते, अवंझसुहचिड्ठे, समंतभद्दे, सुप्पणिहाणाइहेऊ, मोहतिमिरदीवे, रागामयविज्जे दोसानल-जलनिही, संवेगसिद्धिकरे हवइ अचितचिंतामणिकप्पे । स एवं परंपरत्थसाहए तहा करुणाइभावओ अणेगेर्हि भवेर्हि विमुच्चमाणे पावकम्मुणा, पवड्ठमाणे अ सुहभावेर्हि अणेगभविआए आराहणाए पाउणइ सळ्वुत्तमं भवं चरमं अचरमभवहेउ अविगलपरंपरत्थनिमित्तं । तत्थ काऊण निरवसेसं किच्चं विहूअरयमले सिज्जइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सळ्वदुक्खाणमंतं करेइति । पवज्जापरिपालणा सुत्तं ॥४॥

ते सुभानुबंध सुक्रियाथी ने(ते) प्रवज्यावान् साधें प्रधान सत्यार्थ प्रति सम्यक्-अविपरीत परार्थसाधननइं विषइं निपुण:, सर्वकाल, ते ते बीज-बीजन्यासादि प्रकारें करी अणुबंधसहित पर(रा)र्थ प्रतिं, ए महोदयवान् परम्परार्थ-साधन थकी बीज ते सम्यक्त्वबीज, बीज ते सासनप्रसंसादिक, ते बीजादि स्थापवें करी परम्परार्थ प्रतिं समग्र वीर्यादिसहित परम्परार्थ प्रतिं अवंध्य छै सुभ चेष्टा जेहनी, सर्वाकारसंपन्नपणे करी समंतभद्र, सुप्रणिधानादिकनो हेतु क० कारण अन्यूनपणै, मोहांधकार टालवानें स्वभावें करी दीप सरिखो, रागरूप रोगनो वैद्य चिकित्सासमर्थयोगइं करी, द्वेषरूप अग्निनें समुद्र सरिखो तद्विध्यानशक्तिभाव थकी, संवेगसिद्धिकर होइं तत्कारणभोगें करी, अचित्य-चिंतामणि सरिखो सत्त्वसुखकारणपणें करी. ते-अधिकत प्रव्रज्यावान एणें प्रकारें धर्मदांनें कंरी परम्परार्थनो साधक प्रधानभव्यपणें करी, तथा करुणादिभाव थकी अनेक जन्में करी पापकर्म जे ज्ञांनावरणीयादिक तेणें मुंकातौ थकौ, प्रकर्षे वर्द्धमान संवेगादिक-सुभभाव छइं परमार्थिक, अनेक-भविक आराधनायें करी पामइं सर्वोत्तम भव तीर्थंकरादिकनो छेहलो भव मोक्षनो कारण. अविकल परम्परार्थनों कारण अनुत्तर पुण्यसंभार सद्भावें करी, ते भवनें विषें महासत्त्वोनें योग्य समस्त कार्य करीनें, बद्धयमांन-प्राक्बद्ध-कर्मे रहित थको, विवहारथी सामान्यें अणिमादि अइंस्वर्ग(शय)नइं पामइं, केवली होइं, भवोपग्राही कर्में मुंकायै, सर्वथी कर्मनो नास करें, सर्व दुक्खनो अंत करें सदा पुनर्भवना अभाव थको, तत्त्वत: । प्रव्रज्या-परिपालना-सूत्रं समाप्तं ॥४॥

★

स एवमभिसिद्धे,परमबंभे, मंगलालए, जम्मजरामरणरहिए, पहीणासुहे, अणुबंधसत्तिवज्जिए, संपत्तनिअसरूवे, अकिरिए, सहाव संठिए, अणंतनाणे, अणंतदंसणे । से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे, अरूवी सत्ता, अणित्थंत्थसंठाणा, अनंतविरिआ, कयकिच्चा, सव्वाबाहविवज्जिआ, सव्वहा निरविक्खा, थिमिआ, पसंता । असंजोगिए

## एसाणंदे, अउ चेव परे मए ।

ते प्रस्तुत [प्र]व्रज्याकारी इंणे सुख परम्परा-प्रकार करी अभिसुध(सिद्ध) थको, परमब्रह्म सदा निरुपद्रवपणें करी, मंगलनो ग्राहि(गृह)गुणोत्कर्षयोगें करी, जन्मजरामरणें रहित कर्मनिमित्तनें अभावे करी, एकांते प्रक्षीण छें अशुभ, अनुबंधशक्तियें रहित अशुभ आश्रीनें, पांम्यौ छैं आत्मसरूप केवल जीव, गमनादि क्रियासून्य, यथोक्तं- ''स्थित: शीतांशुवज्जीव: प्रकृत्या भावशुद्धया। चंद्रिकावच्च विज्ञानं, तदावरणमभ्रवत् ॥'' स्वभाव जे ग्यांनादिक तेनें विषें रह्यौ, अनंतनाणी ज्ञेयना अनंत, अनंतदर्शनी, ते सिद्धने शब्द नही, रूप नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, स्फरसन नहीं, ए तौ पुदलना धर्म छें ते माटे, रूपरहित सदभाव सत्ता छें ग्यांननी परें, जे अरूपणी सत्तानो अनित्थंस्थसंस्थान छैं, अनंतवीर्या प्रकृतियें ज प्ररूपणी सत्या छैं, कृत:कृत्या कार्यनिष्पादिनें करी द्रव्य थकी, सर्व आबाधाइं वर्जित, सर्वथा निरपेक्षत वृतिनें नासें करी, स्तिमिता सुखना प्रकर्षथी अनाकुला, प्रसांत तरंगरहित महोदधितुल्या, संजोगरहित ए आणंद सुखविसेष, पुद्रल संजोगे रहित, एटला माटें ज निरपेक्षपणा माटें उत्कुष्टो मांन्यो ।

अविक्खा अणाणंदे । संजोगो विओगकारणं । अफलं फलमेआओ। विणिपायपरं खु तं, बहुमयं मोहाओ अबुहाणं, जमित्तो विच( व )ज्जओ, तओ अणत्था अपज्जवसिआ । एस भावरिऊ परे अऊ परे अओ वुत्तो उ भगवया । एसा जिणाणा (?) ।

अपेक्षा ते आनंद नहीं औत्सुक्य-दुक्खपणा थकी, संजोग ते विजोगनुं कारण छैं-संजोगनें अंतें विओग होइं ए स्वभाव छैं ते माटइं, ए संजोगथी जे फल ते अफल जांणवुं, ते संजोगिक फल ते अवस्यें पतनीयसील छैं, अज्ञान थकी ए फल बहुंमत कमानुं मूर्खजनोनें बहुमत छै, जे माटें अज्ञान थकी अफलनें विषें फलबुद्धि एहवो विपर्यय होइं, ते विपयर्यथी घणा अनर्थ होइं असत्प्रवृत्तियें करी, ते अनर्थ सानुबंधपणें करी अपर्यवसित क० अंतररहित छै, ए अज्ञान ते उत्कृष्टो भावरिपु छें, एटला माटें ज कह्यौ भगवंत तिथंकरइं यथोक्तं- ''अण्णाणतो रिऊ अण्णो पाणिणं णेव विज्जइ ।''

नागासेण जोगो एअस्स । से सरूवसंठिए । नागासमण्णत्थ, न

## डिसेम्बर २००७

सत्ता सदंतरमुवेइ । अचिंतमेअं केवलिगम्मं तत्तं । निच्छयमयमेयं । विजोगवं च जोगोत्ति न एस जोगो, भिण्णं लक्खणमेअस्स । न इत्थाविक्खा, सहावो खु एसो अणंतसुहसहावकप्पो । उवमा इत्थ न विज्जइ । तब्भावेऽणुभवो परं तस्सेव । आणा एसा जिणाणं सव्वणूणं अवितहा एगंतओ । न वितहत्ते निमित्तं । न वाऽनिमित्तं कज्जंति । एसा जिणाणा(?) निद्दंसणमित्तं तु नवरं -

आकास संघातै सिद्धनो संयोग नथी । ते सिद्ध तो पोताना स्वरूपनें विषें संस्थित छें । आकास ते बीजा आधारनें विषें नथी । इहां युक्ति-सत्ता ते सदंतर प्रतें न पामें । ए प्रस्तुत स्वरूप ते अचिंत्य छइं, एहनौ तत्त्व ते केंवलीगम्य छें। ए निश्चयनयनो मत जांणवो। विवहारनयमतें तो संजोग छतें पण तत-संजोग-शक्तिना क्षय थकी असंजोग ज युक्त छैं । इहां युक्ति छें 'वियोगवांश्च योग इति कत्वा'- जोग ते विजोगवंत होइं एटला माटें, ए संजोग सिद्ध आकास नहीं, ए संजोगनों भिन्न छैं लक्षण-स्वरूप । ए संजोगनें विषइं सिद्धनें अपेक्षा नथी । ते सिद्धनों एहज स्वभाव । अनंत सुखस्वभाव सरिखो कर्मक्षयइं व्यंग क॰ प्रगट, ए सिद्ध सुखनै विषें उपमा नथी, यथा- ''स्वयंवेद्यं हि तद ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा । अयोगी न विजानाति, सम्यक् जात्यं वच्चतं(?) ॥१॥ " ते सिद्ध सुखना भावनें विषें अनुभव छें, पण एटलो विशेष छें जे ते सुखनो अनुभव सिद्धनें ज छें। ए भगवंतनी आज्ञा-वचन छइं सर्वज्ञोनी, साची छें एकांतपणें जिनाज्ञा, असत्यनुं निमित्त रागादिक तेना अभावथी, यथा- "रागाद्वा द्वेषाद्वा, मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतं । यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं नास्ति ॥१॥ कारण विना कार्य न होइं ए पण जिनाज्ञा, ए रीतें सिद्धसुख ते स्वसंवेद्य छड़ं । दूष्टांतमात्र छैं एटलो विशेष-

सव्वसत्तुक्खए सव्ववाहिविगमे सवत्थसंजोगेणं सव्विच्छासंपत्तीए जारिसमेयं इत्तोऽणंतगुणं तं तु भावसत्तुक्खयादितो । रागादओ भावसत्तू, कम्मोदया वाहिणो, परमलद्धीओ उ अड्ठा, अणिच्छेच्छा इच्छा । एवं सुहुममेअं, न तत्तओ इअरे[ण]गम्मइ, जइसुहं व अजइणा, आरुग्गसुहं व रोगिणत्ति विभासा । अचिंतमेयं सरूवेणं । साईअपज्जवसिअं एगसिद्धाविक्खाए । पवाहओ अणाई । ते वि भगवंतो एवं, तहा भव्वत्ताइभावओ । विचित्तमेअं तहाफलभेएणं । नाविचित्ते सहकारिभेओ । तदविक्खो तउत्ति अणेगंतवाओ तत्तवाओ । स खलु एवं । इहरहेगंतो । मिच्छत्तमेसो । न इत्तो ववत्था । अणारिहमेअं । संसारिणो ओ सिद्धत्तं । नाबद्धस्स मुत्ति( त्ती ) सद्दत्थरहिआ । अणाइमं बद्धो ( बंधो ) पवाहेणं अईअकालतुल्लो । अबद्धबंधणे वा मुत्ती पुणो बंधपसंगओ । अविसेसो अ बंध( बद्ध? ) मुक्काणं । अणाइजोगे वि विओगो कंचणोपलनाएणं ।

सर्व शत्रुनें क्षयें, सर्वव्याधिनइं नासइं, सर्वपदार्थनइं मिलवइं, सर्व इच्छानी प्राप्तिइं, जेहवं ए सुख होइं, एह थकी अनंतगुणं सिद्धनं सुख जाणवं, भावशत्रुना क्षय थया थकी, आदि शब्दात भावव्याधिना क्षय थकी । राग द्वेष मोह जीवनें अपकारीपणा माटें भावशत्रू जांणवा, अनें कर्मना उदय ते जीवनें पीडा करवा थकी व्याधि, उत्कृष्टिओ जे लब्धिओ ते परा हेतुपणें अर्था क॰ अर्थ छइं, सर्वथा इच्छानी निवृत्तिइं अणिच्छा इच्छा छें जिहां । एणें प्रकारें सूक्ष्म ए सुख प्रति परमार्थ थकी न पांमियइ सिद्ध विनां बीजें जीवें दुष्टान्त-साधुना सुख प्रतें असाधु न पांमे, जे माटें साधुसुख ते विसिष्ट क्षयोपसमभावें वेदवा जोग्य छें ते माटें । निरोगीना सुख प्रति जिम रोगी न पांमें, रोगादिकनें अभावें आरोग्यसुख पांमें ते माटें । ए विभाषा करवी । उक्तं च- ''रोगाईणमभावे, जं होइ सुहं तयं जिणो मुणइ । णहि सण्णिवायगही(हि)ओ, जाणइ तदभाव जं सोक्खं ॥'' सर्वथा ए सुख स्वरूपें अचित्य छें, बुद्धिनें अविसयपणा थकी । एक सिद्धनी अपेक्षाइं [सादि अपर्यवसित छइं ।] प्रवाह थकी अनादि अनंत छड़ं । ते भगवंत-सिद्ध पण इमज एक सिद्धनी अपेक्षायें सादि अनंत, प्रवाहनी अपेक्षाइं अनादि अनंत, तथाभव्यत्वादि भाव थकी । तथाभव्यपणं ते तथाफलपरिपाकी छैं विचित्र छें ए तथाभव्यत्वादिक । तथा कालादिक भेद भावी फलभेदें करी अपवित्र. तथा भव्यत्वादिकनें विषें सहकारीनो भेद न होड़ं. ते सहकारीनो भेद ते तेनी अपेक्षाइं छें. विचित्र भव्यत्वादिकनी अपेक्षाइं छैं. तदतत्स्वभावत्वे तदपनिपाताभादिति । अनेकांतवाद ते तत्त्ववाद छै, सर्वकारण सामर्थना कहिवा थकी । ते अनेकांतवाद निश्चें इणें प्रकार छै तथाभव्यत्वादि भावें । तथाभव्यत्वादिकनें अभावें एकांतवाद छें । ते एकांतवाद ते मिथ्यात्व छडं । ए एकांतवाद थकी विवस्था नथी । 'भव्यत्वाभेद-सहकारिभेदस्यायोगात् तत्कर्मताभावात् कर्मणोपि कारकत्वात् अतत्स्वभावस्य च कारकत्त्वासंभवादिति भावनीयं' । ए एकांतनुं आश्रयण ते अजुक्त छै । संसारीनें ज सिद्धपणुं होइं अन्यनें न होइं । अबद्धनें तात्विकी मुक्ति न होइ, बंधनें अभावें शब्दार्थरहित छें । प्रवाहे अनादिमांन बंध छें अतितकाल सरखो छे । अतितकाल पण प्रवाहें अनादिमंत छें । अबंधने बंधन छतें प्रथम मुक्तिनो अभाव होइ, पुनर्बंधना प्रसंग थकी । अबंधत्व हेतुयें करी अबंध (अबद्ध) अने मुक्तनें विषइं विसेष नथी । जीव कर्मनो अनादि–जोग छें तो पण तेनो विजोग अविरुद्ध ज छें, कंचन पाषांणनें दुष्टांतें । लोकनें विषें तेम देखीइं छै ।

न दिदिक्खा अकरणस्स । न यादिष्ठंमि एसा । न सहजाए निवित्ती। न निवित्तीए आयद्वाणं । न य अण्णहा तस्सेसा । न भव्वत्ततुल्ला नाएणं । न केवलजीवरूवमेअं । न भाविजोगाविक्खाए तुल्लत्तं, तदा केवलत्तेण सयाऽविसेसाओ । तहासहावकप्पणमपमाणमेव । एसेव दो[सो]परिकप्पिआए । परिणामभेआ बंधाइभेओत्ति साहू, सव्वनय-विसुद्धीए निरूवचरिउभयभावेणं । न अप्पभूअं कम्मं । न परिकप्पिअमेअं । न एवं भवाइभे[ओ]। न हेउफलभावो । तस्स तहासहावकप्पणमजुत्तं । निराहाराऽन्नयकओ निओगेणं । तस्सेव तहाभावे जुत्तमेअं । सुहुममट्ठपयमेअं । विचिंततिअव्वं महापण्णाएत्ति ।

इंद्रियरहितनें दिदृक्षा कहतां जोवानी इच्छा होयें नही । अद्रिष्टनें विषें दिदृक्षा होइं नही । साथै उपनी जे दिदृक्षा ते निवृत्ति होइं नहीं । चेतन्यनी परें दिदृक्षानी निवृत्ति छतें आत्मानें स्थानक नही, ते तेथी अव्यतिरेकपणा माटें । व्यतिरेकें आत्मानी दिदृक्षा न होइं । भव्यत्वनें तुल्य दिदृक्षा नथी, न्यायें करी । केवलजीवरूप भव्यत्वपणुं नथी, अनें दिदृक्षा तो केवलजीवरूप छैं । भावी योगनी अपेक्षाइं महदादिभावें दिदृक्षानें भव्यत्व साथे तुल्यपणु नथी, भावी योगनें अभावैं तिवारें केवलपणा संघातें सदा अविसेस छें । तथा सांसिद्धिकपणा करी ते थकी उपरें पण दिदृक्षानी आपत्ति छइं, कैवल्यनें अविसेषें । दिदृक्षाना भाव-अभाव स्वभावनुं कल्पवुं ते अप्रमाण ज छें । आत्माथी तेनें भेदनी आपत्ति होइं ते माटें । एहज प्रमाणाभावलक्षण दोष परिकल्पित दिदृक्षा मानें छत्तें, अनें आत्माना परिणामभेद थकी बंधमोक्षादिकनो भेद ए साधु क॰ प्रमाणिक छइं । सर्वनय-विसुद्धियें करी उभयभाव क॰ प्रस्ताव थकी अबंधमोक्षभावें निरुपचरित छैं । आत्मभूत कर्म नथी, एटलें बोधलक्षण कर्म नहीं । ए कर्म परिकल्पित अवतुं (? आवतुं ?) नथी वासनादिरूप, आत्मभूत कर्म परिकल्पें थकें बोधमात्रनें सामान्यें करी क्षणभेद छें ते पण मुक्तक्षणभेदनी परें भव-मोक्षनो भेद नही होइं । भवनो अभाव ते ज-संतानोच्छेदरूप सिद्धी नही । संतांननो उच्छेदें तेहनो अनुत्पाद नही एटलें उत्पाद ज होय । एणी रीतें समंजसपणुं नही न्यायोपपन्न । एणें प्रकारें संसार अनादिमंत नही, कचित् ज संतान थकें उत्पत्ति छे ते माटें । तथा चरम आद्य क्षणनें कारणकार्यभाव नथी, ते माटें हेतुफलभाव नही । तेहनें तथास्वभावनुं कल्पवुं ते अजुक्त छें, निराधार अनव्यय(अन्वय) कर्यो अवस्यपणइं । तेहने ज तथाभाव छें-तथास्वभावनुं कल्पवुं युक्त छै । ए सूक्ष्म अर्थपद छें, भावगम्यपणा माटें । महाप्रज्ञाइं चिंतववुं, अन्यथा जांणी सकीयइं नहीं ते माटें । अपज्जवसिअमेवं सिद्धसुक्खं । इत्तो चेवुत्तमं इमं । सव्वहाणु-

स्सुगत्ते अणंतभावाओ । लोगंतसिद्धिवासिणो एए । जत्थ य एगो तत्थ निअमा अणंता । अकम्मुणो गई पुळ्वपओगेणं अलाउप्पभिईनायओ । नियमो अओ चेव । अफुसमाणगईए गमणं । उक्करिसविसेसओ इयं ।

इणि रीतें-उक्त विधियें सिद्धसुख ते अपर्यवसित छइं । एटला ज माटें ए सुख ते उत्तम छैं । सर्वथा उत्सुकरहितपणुं छें ते अनंतभाव छें ते माटे । चउद राजलोकनें अंतें जे प्रसस्त क्षेत्ररूप सिद्धि छें, तेमां वासी ए सिद्ध छें । जे क्षेत्रे एक सिद्ध छें ते क्षेत्रे नियमा अनंत सिद्ध छें । यथा-"जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्ता । अण्णोण्णमवाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१॥" कर्मरहित सिद्धनी गति इहांथी लोकंत सुद्धी पुर्वप्रयोगहेतुयें छें, तत्स्वभावपणा माटइं, तुंबडा प्रमुखना दृष्टांतथी । प्रभृतिग्रहणात् एरंडफलादिक पण । एहज तुंबडादि दृष्टांतथी उर्द्धवासनो नियम छें । अस्पृस्यमांन गतियें गमन छें सिद्धनो सिद्धिक्षेत्र प्रतइं । उत्कर्ष विसेस थकी ए अस्पृस्यमांन गति संभवें छइं ।

अव्वुच्छेओ भव्वाणं अणंतभावेणं । एअमणंताणंतयं । समया इत्थ नायं । भव्वत्तं जोगयामित्तमेव केसिंचि, पडिमाजुग्ग दारुनिदंसणेण । ववहारनयमेअं । एसो वि तत्तांग( तत्तंग )पवित्तिविसोहणेण अणेगंतसिद्धीओ निच्छयंगभावेण । परिसुद्धो उ केवलं ।

भव्यजीवनो विवच्छेद नथी, अणंतनो भाव छें ते माटें । ए भव्यनुं अनंतु अनंतानंत कहें छें, युक्त अनंतकादिक नथी, एटला माटें भव्यनो क्षय नथी । इहां समया क॰ काल ते दृष्टांत छें । एणें प्रकारे भव्यपणुं ते सिद्धि प्रतें केटलाइक प्रांणीनें योग्यतामात्र ज छें, पण सिद्धसे नही । प्रतिमाजोग्य काष्ट दृष्टांते । जिम काष्टनी सरखी निस्पृ(स्प)ति छते ए काष्ट प्रतिमाजोग्य होइं, गांठ प्रमुख रहितपणे, अनें बीजुं काष्ट गंठीलुं माटें प्रतिमाजोग्य नही ए दृष्टांत । ए विवहार नयनो मत छें । ए व्यवहारनय पण परमार्थनो अंग छें । व्यवहारनयमतें प्रव्रज्यादि प्रदांन थकी परलोक-प्रवृत्ति-विसोधनें करी । ए प्रकारें अनेकांतसिद्धि । ते माटें निश्चयनो व्यवहार ते अंग छें । एवं प्रवृत्तिइ अपूर्वकरणादिकनी प्राप्ति होय ते माटें परिसुद्ध तो केवल आज्ञापेक्षी पुष्टालंबन छें ।

एसा आणा इह भगवओ समंतभदा तिकोडिपरिसुद्धीए अपुणबंधगाइगम्मा । एअप्पिअत्तं खलु इत्थ लिंगं, उचितपवित्तिविन्नेअं, संवेगसाहगं निअमा । न एसा अण्णेसिं देआ । लिंगविवज्जयाओ तप्परिण्णा । तयणुग्गहडयाए आमकुंभोदगनासनाएणं । एसा करुणत्ति वुच्चइ एगंतपरिसुद्धा अविराहणाफला तिलोगनाहबहुमाणेणं निस्सेअस-साहिगत्ति । पवज्जाफलसुत्तं ॥५॥

ए आज्ञा इहां भगवंतनी उभयनययुक्त छें, सर्व प्रकारें निर्दोष छें भगवंतनी आज्ञा कस-छेद-तापरूप त्रिकोटी-परिसुद्धियें करी । ए भगवंतनी आज्ञा अपुनर्बंधक तथा मार्गाभिमुख जीवें पामवा जोग्य छें, संसाराभिनंदी जीवे गम्य नथी । आज्ञाप्रियपणुं ते अपुनर्बंधकादिकनुं लिंग छे, अ(आ)ज्ञाप्रियपणुं पण उचित प्रवृत्ति क॰ तदाराधन-तद्बहुमांन थकी जांणवुं; जेहनें भगवंतनी आज्ञा प्रिय छें तेहने नियमा संवेग होयें । जे माटें एहवी छें ते माटें अन्य संसाराभिनंदी भणी न देवी । लिंगविपर्यय जे संज्ञानद्वैषादि लक्षण ते थकी संसाराभिनंदी जांणीइं । अपुनर्बंधकना लिंग थकी भवाभिनंदीनां लिंग विपरीत होइ । उक्तं च-''क्षुद्रो लोभरती(ति)र्दीनो, मत्सरी भयवान् शठः । अज्ञो भवादिनंदी स्यान्निःफलारंभसंगतः ॥" ते संसाराभिनंदी जीवना अनुग्रहनें अर्थे आज्ञा न देवी । काचा कुंभमां पांणी भरवुं ते दृष्टांतें ।" आमे घडे निहत्तं, जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्धंतरहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ ॥" इति एसा करुणां कहिइं । अयोग्यनें भगवंतनी आज्ञा न देवी । भगवंतनी आज्ञा ते एकांते परिसुद्ध छइं, पापपरिहारें करी । एटला माटें ज आज्ञानुं फल ते अविराधना छैं, सम्यक् आलोचवें करी । एहवी जे आज्ञा ते त्रिलोक[नाथ]जे भगवंत, तेनो जे बहुमान, तदरूप जे हेतु, तेणें करीनइं निःश्रेयस जे मोक्ष तेनी साधनारी छैं, पमाडनारी छै ॥ प्रव्रज्याफलसूत्रं समाप्तं । सूत्र ५ ॥

समाप्तं पंचसूत्रं नाम प्रकरणं कृतं चिरंतनाचार्यै: विवृतं च

वा(या)किनीमहत्तराधर्मसूनु श्री हरिभद्राचार्यै: ॥

इति श्रीपंचसूत्रनांम प्रकरणं समाप्तं ।

लि॰ कृतं वेलजीभारमल: ॥ कच्छ कोडायगांमे संवत १९५८ नां श्रावण सुद ८ ॥

 $\star$ 

# थोडी लघु कृतियाँ

म. विनयसागर

## (१)

## श्रीसिद्धिविजय रचित **नेमिनाथ-भासद्वय**

आबाल ब्रह्मचारी २२वें भगवान् नेमिनाथ के सम्बन्ध में बहुत साहित्य प्राप्त है। प्राकृत, संस्कृत, भाषा साहित्य में इनसे सम्बन्धित अनेकों कृतियाँ बहुतायत से मिलती हैं। श्री वादीदेवसूरि के शिष्य श्री रत्नप्रभसूरि रचित नेमिनाथ चरियं, उदयसिंहसूरि रचित नेमिनाथ चरियं, श्री सूराचार्य रचित द्विसन्धान काव्यं, श्री कीर्तिराजोपाध्याय रचित नेमिनाथ महाकाव्यं, विक्रम रचित नेमिदूतम्, पादपूर्ति साहित्य प्रभृति, और भाषा साहित्य में रास, गीत, भजन, बारहमासा आदि विपुल कृतियाँ प्राप्त हैं।

भास-द्वय के रचयिता सिद्धिविजय हैं। पट्टावली समुच्चय पृ. १०९ के अनुसार हीरविजयसूरि के शिष्य कनकविजय-शीलविजय के शिष्य सिद्धिविजय हैं। इनके सम्बन्ध में अन्य कोई परिचय प्राप्त नहीं होता है।

भास-द्वय का एक स्फुट पत्र प्राप्त है। जो १७वीं शताब्दीं का ही लिखित है। जिसका माप २४.३ x १०.४ से.मी. है, दोनों भासों की कुल पंक्ति १३ तथा प्रति अक्षर ४२ हैं। अक्षर बड़े और सुन्दर हैं। भाषा गुर्जर है। इन दोनों भाषों का सारांश इस प्रकार है:-

विवाह हेतु गए हुए नेमिनाथ ने जब पशुओं की पुकार सुनी तो रथ को वापिस मोड़ लिया । उस छबीले नेमिनाथ के नयन कठोर हो गए । दूसरे पद्य में आषाढ़ मास के आने पर काले बादल छा गए हैं और घनघोर वर्षा हो रही है । तीसरे पद्य में सावन का महिना और उस वर्षा की छाया चल रही है । भादवे के महिने में वही छाया स्नेह को जागृत करती है और आसोज के महिनें में नेत्रों में आंसू ढलकाती हैं । चौथे पद्य में नेमिनाथ की काया सुन्दर है । वह इतनी माया क्यों कर रहे हैं और मेरे हृदय में विरहानल की आग को क्यों प्रदीप्त कर रहे हैं । पाँचवें पद्य में उनकी कर्त्तव्यशीलता को देखकर मेरा चित्त चमत्कृत हो रहा है। नेमीश्वर मुझे छोड़ गए हैं और मैं किसके समक्ष अपने हृदय की बात कहूँ। छठे पद्य में जिसने भी नेमिनाथ को प्राप्त कर लिया है, वैसे का जग में आना भी धन्य है। इस प्रकार राजुल विलाप करती है। सातवें पद्य में कवि सिद्धिविजय कहता है कि यह भव परम्परा की डोर टूट गई है। नेमिनाथको केवलज्ञान होने पर राजुल ने भी प्रभु को प्राप्त कर लिया है।

दूसरे भास में राजुल अपनी सखी बहिन को कहती है- सुनो मेरी बहिन ! मेरा वही दिन धन्य होगा जब मैं इन लोचनों से उनके दर्शन करूँगी। अभी तो मैं जल बिना मछली की तरह तड़प रही हूँ। विरहानल मेरे देह को जला रहा है। मैं मन की बात किसे कहूँ ? मैं पूछती हूँ कि यहाँ तोरण तक आकर वापस लौटने का क्या कारण है ? निरंजन नेमिनाथ का ध्यान एवं विलाप करती हुई राजुल सिद्धि सुख को प्राप्त करती है। ये दोनों भास अद्यावधि अप्रकाशित हैं और अप्राप्त भी हैं। सिद्धिविजयजी के प्रशिष्य प्रसिद्ध श्री महोपाध्याय मेघविजयजी थे।

सिद्धिविजयजीकी केवल चार ही लघु कृतियाँ प्राप्त हैं । दो नेमिनाथभास जो प्रस्तुत हैं और दो भास श्री विजयदेवसूरि से सम्बन्धित हैं। ये दोनों भास विजयदेवसूरि के परिचय से साथ प्रकाशित किए जाएंगे । इस कवि की अन्य कोई कृतियाँ मुझे प्राप्त नहीं हुई हैं। दोनों भास प्रस्तुत है:--

## (१) नेमिनाथ-भास

परणकुं नेमि मनाया तब पसुअ पुकार सुणाया । रथ फेरि चले यदुराया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥ १॥ नीके नयन कठोर भराया, छबीले नेमि जिणिंद न आया ॥ आंचली । । उनयु जलधर जब आया घनश्याम घटा झड़ लाया ॥ इसउ मास आसाढ सोहाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥ २॥ सावण की लागी छाया भाद्रवडइं नेह जगाया । आसडइ आंसू भराया, छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥३॥

#### डिसेम्बर २००७

नेमिसरनि वरकाया काहे इतनी करी माया । विरहानल मोहि लगाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥४॥ मोहि चित्त चमक्कउ लाया नेमीसर छोडि सधाया । अब काह करुं मोरि माया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥५॥ जिणइं नेम जिणेसर पाया धन सो जन जगमां आया । हम बिलवति राजुल राया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥६॥ भव संतति दोर कपाया राजुल पहु केवल पाया । मुनि सिद्धिविजय गुण गाया छबीले नेमिजिणिंद न आया ॥७॥ *इति श्री नेमिनाथ भास समाप्त* 

(२) नेमिनाथ-भास

सुणउ मेरी बहिनी काह करीजइ रे, नेमि चलउ हइंकु दिन लीजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥ १॥ उन दरिसन विन लोचन खीजइं रे, युं सरजल विन सफरी थीजइं रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥२॥ विरहानल मुदि देह दहीजइ रे, मनकी वात कहो क्या कीजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥३॥ तोरणथी जउ फेरी चलीजइ रे, तउ किन कारण इहां आईजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥३॥ जउ उनकी कब बात सुणिजइ रे, हार वधाइउ उसकुं दीजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥४॥ सोच न जीहा तास घडिजइ रे, जउ उनविय वात सुणीजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥६॥ सोच न जीहा तास घडिजइ रे, जउ उनविय वात सुणीजइ रे ॥ सुणउ मेरी बहिनी ॥६॥

इति श्री नेमिनाथ भास समाप्त

#### $\star$

## (२)

## कनकमाणिक्यगणि कृत महोपाध्याय अनन्तहंसगणि स्वाध्याय

अनन्त अतिशयधारी तीर्थङ्करों, गणधरों, विशिष्ट आचार्यों एवं महापुरुषों के नाम-स्मरण एवं गुणगान से हमारी वाणी पवित्र होती है। श्रद्धासिक्त हृदय से हमारी वाणी भी कर्मनिर्जरा का कारण बनती है। पूर्व में प्रायः करके ये समस्त गुणगान प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हुआ करते थे, किन्तु समय को देखते हुए आचार्यों ने इन कृतियों को प्रादेशिक भाषाओं में भी लिखना प्रारम्भ किया। मरु-गुर्जर भाषा में रचित काव्यों को गहूँली, भास, स्वाध्याय, गीत आदि के नाम से कहा जाने लगा।

प्रस्तुत कृति महोपाध्याय श्री अनन्तहंसगणि से सम्बन्ध रखती है। इस कृति का स्फुट पत्र प्राप्त हुआ है, जिसका विवरण इस प्रकार है :-साईज २६x३, ११x३ से.मी. है। पत्र संख्या १, पंक्ति संख्या कुल १७ है। अक्षर लगभग प्रति पंक्ति ४५ हैं। लेखन संवत् नहीं दिया गया है, किन्तु १६वीं सदी का अन्तिम चरण प्रतीत होता है। स्तम्भतीर्थ में लिखी गई है। भाषा मरु-गुर्जर है। कई-कई शब्दों पर अपभ्रंश का प्रभाव भी नजर आता है।

इसके कर्ता श्री कनकमाणिक्यगणि हैं । इनके सम्बन्ध में किसी प्रकारका कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं है ।

महोपाध्याय श्री अनन्तहंसगणि प्रौढ़ विद्वान् थे, और श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे । इस रचना के अनुसार तपगच्छपति श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था और श्री सुमतिसाधुसूरि के विजयराज्य में विद्यमान थे ।

इस कृति के प्रारम्भ में उपाध्याय श्री अनन्तहंस गणि के गुण-गणों का वर्णन किया गया है । लिखा गया है कि-

ये जिनशासन रूपी गगन के चन्द्रमा हैं,त्रिभुवन को आनन्द प्रदान करने वाले हैं, नेत्रों को आनन्ददायक कन्द के समान हैं। मान रूपी मद का निकन्दन करनेवाले हैं। उपाध्यायों में श्रेष्ठ राजहंस हैं। सुधर्मस्वामी के समान नाम ग्रहण करने से नवनिधि प्राप्त होती है। इनके दर्शन से परमानन्द, सुख-सौभाग्य और सत्कार की प्राप्ति होती है। इनके गुण मेरु पर्वत के समान हैं और वचनामृत सोलह कलापूर्ण चन्द्रमाके समान हैं। स्वरूपवान हैं। ग्यारह अङ्ग को धारण करने वाले हैं। आगम, छन्द, पुराण के जानकार हैं। तपागच्छ को दीपित करने वाले हैं। कामदेव को जीतने वाले हैं, और मान-मोह का निराकरण करने वाले हैं। कामदेव को जीतने वाले हैं, और मान-मोह का निराकरण करने वाले हैं। पूर्व ऋषियों के समान अनुपम आचार और संयम को धारण करने वाले हैं। जिस प्रकार आषाढ़ की घनघोर वर्षा से पृथ्वी प्रमुदित होती है, उसी प्रकार इनकी सरस वाणी रूपी झिरमिर से सब लोग प्रमुदित होते हैं। छट्ठे पद्य से कवि ऐतिहासिक घटना की ओर इंगित करता है।

ईडर नगर के अधिपति महाराजा भाण अच्छे कवि थे और कवियों का सत्कार सम्मान करते थे । सातवें-आठवें पद्य में श्री जिनमाणिक्यसूरि के तप-तेज, संयम का वर्णन करते हुए लिखा है कि श्री अनन्तहंसगणि श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे । नवमें पद्य में तपागच्छाधिपति श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने अनन्तहंसगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया । दसवें पद्य में गच्छपति श्री सुमतिसाधुसूरि जो कि आगमों के ज्ञाता जम्बूस्वामी और वज्रस्वामी के समान थे, उन्हीं के शिष्य ने इस स्वाध्याय की रचना की है । अन्त में कवि कहता है कि जब तक सातों समुद्र, चन्द्र, सूर्य, मेरु, धरणी, मणिधारक सहस्रफणा सर्पराज विद्यमान हैं, तब तक तपागच्छ के प्रवर यतीश्वर श्री अनन्तहंस संघ का मङ्गल करें ।

पद्य छ: के प्रारम्भ में राजा वल्लभ भाषा उल्लेख है। सम्भवत: यह किसी देशी या राग-रागिणी का नाम होना चाहिए।

श्री मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई लिखित 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' पैरा नं. ७२४ में लिखा है :- भाण राजा के समय में ईडर दुर्ग पर सोनीश्वर और पता ने उन्नत प्रासाद बनाकर अनेक बिम्बों के साथ अजितनाथ भगवान की प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १५३३ में करवाई थी । इसी भाण राजा के राज्यकाल में कोठारी श्रीपाल ने सुमतिसाधु को आचार्य पद दिलवाया था । अहमदाबाद निवासी हरिश्चन्द्र ने राजप्रिय और इन्द्रनन्दी को आचार्य पद दिलवाया था। अहमदाबाद के मेघमन्त्री ने धर्महंस और इन्द्रहंस को वाचक पद, पालनपुर निवासी जीवा ने आगममण्डन को वाचक पद और ईडर के भाण राजा के मन्त्री कोठारी सायर ने गुणसोम को, संघपति धन्ना ने अनन्तहंस को एवं आशापल्ली के झूठा मौड़ा ने हंसनन्दन को वाचक पद दिलवाया था। श्री देसाई लिखते हैं कि इस ईडर में तीन साधुओं को आचार्य पद, छ: को वाचक पद और आठ को प्रवर्तिनी पद पृथक्-पृथक् रूप से प्राप्त हुआ था। अर्थात् उस समय ईडर धर्म की नगरी बनी हुई थी।

पैरा नं. ७५८ में लिखा है :- अनन्तहंसगणि ने १५७१ में दस दृष्टान्त चरित्र की रचना की थी, और पैरा नं. ७३८ में लिखा है कि संवत् १५७० में अनन्तहंस ने ईडरगढ़ चैत्य का वर्णन करते हुए ईला प्राकार चैत्य परिपाटी लिखी थी।

इस प्रकार इस कृति से तीन महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरकर आते हैं :-१. अनन्तहंसगणि श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य थे, २. श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने अनन्तहंस को उपाध्याय पद प्रदान किया था और ३. सुमतिसाधुसूरि के शिष्य कनकमाणिक्यगणि ने इस स्वाध्याय की रचना की थी।

तपागच्छ पट्टावली पृष्ठ ६७ के अनुसारश्री जिनमाणिक्यसूरि, श्री लक्ष्मीसागरसूरि के शिष्य थे।

श्री लक्ष्मीसागरसूरि ५३वें पट्टधर थे। इनका जन्म १४६४, दीक्षा १४७७, पन्यास पद १४९६, वाचकपद १५०१, आचार्य पद १५०८, गच्छनायक पद १५१७ में प्राप्त हुआ था और सम्भवत: १५४१ तक विद्यमान रहें।

सुमतिसाधुसूरि ५४वें पट्टधर थे और इनको आचार्य पद श्री लक्ष्मीसागरसूरि ने प्रदान किया था। इनका जन्म संवत् १४९४, दीक्षा संवत् १५११, आचार्य पद १५१८ और स्वर्गवास संवत् १५५१ में हुआ था। विशेष कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। यह निश्चित है कि अनन्तहंसगणि को उपाध्याय पद विक्रम संवत् १५२५ से १५३५ के मध्य में प्राप्त हो चुका था। इनके उपदेश से १५२९ में लिखित शिलोपदेश माला की प्रति पाटण के भण्डार में हैं।

#### डिसेम्बर २००७

इस रचना को ऐतिहासिक रचना मानकर ही प्रस्तुत किया जा रहा हैं :-

> जय जिणशासण-गयणचन्द, तिहूअण-आणन्दण । जय जण-नयणानन्द-कन्द, मदमान-निकन्दण ॥ उवझाया सिरि रायहंस-अवयंस भणीजइ । मुणिवर श्रीय **अनन्तहंस**-गुण किम्पि थुणीजइ ॥१॥ *दक्षिणी ढाल*

ए सुणिवरू ए सोहमसामि नामिइ नवनिधि पाईइ । तुम दरिसणि ए परमाणंद सम्पद सुक्ख सकाराहीइं ॥२॥ तुम्ह गुरुअडि ए गुणह पमाण मेरु समाण वखाणीइ । तुम्ह वयणला ए अमीय कलोल सोल कला ससि जाणीइ ॥३॥ तुम्ह सूरति ए सहजि सुरंग अंग अग्यार मुखिइ धारइ । एह आगम ए छंद पुराण जाणपणइं जणमण हरइ ॥४॥ तपगच्छि दीपिइ मयण जीपइ माण माण मोह निराकरइ । आदिल ऋषि आचार अनुपम सुपरि संजम मनि धरइ ॥ आषाढ़ जलधर सधरधार धोरणी जिम विस्तरइ । वरिसन्ति वाणी सरस को नरवर समुभर झिरि मिरि झडि करइ ॥५॥ *राजा वल्लभभाषा* 

धन धन ईडर नयर नाह लीलापति हिन्दु पातसाह । नव कवित विनोद कला सुजांण रंजविउ यस भुपति राय भाण ॥६॥ गुरु महिमा महिमण्डलि अनन्त गुरु दिनकर अवनि... वन्त । गुरु तप जप सय संयम तेजवन्त गुरु पञ्चम कालि प्रतापवन्त ॥७॥ गुरि विनय विवेक समायरीयगुरि विज्जुवउ चअल केरिय । गणधर श्री जिनमाणिक्क-पाय तुट्ठे तुम्ह आप्यउ ए पसाय ॥८॥ रागि णीरागता पुण तपगच्छपति सिय लखिमीसागरसूरि । हाँसी आणंद धना-वि.... अनन्तहंस उवझाय पद ठवणइ ॥ परिग युगति दाखी नव ए ॥९॥

आगमइ ए जम्बूय वयरकुमार तेह जो मलि एह मुनिवरूए । गच्छपति श्री **सुमतिसाधुसूरिन्द** सीसरयण मंगलकरूं ए ॥१०॥ जां सात सायर ससि दिवायर मेरु अविचल मन्दरो । जो धरइ धरणि बीय भुअबलि सेसफणवय मणिधरो ॥ तां लगइ प्रतपउ इणि तपागच्छि पवर एह यतीसरो । श्री संघ मंगल करण सहगुरु **अनन्तहंस** सुहंकरो ॥११॥ इति महोपाध्याय श्रीअनन्तहंसगणिपादानां स्वाध्याय: ॥६॥ इति महोपाध्याय श्रीअनन्तहंसगणिपादानां स्वाध्याय: ॥६॥ कृत: कनकमाणिक्यगणिभि: ॥ श्री स्तम्भतीर्थनगरे । ॥ श्री ॥

## (३)

# श्री भीमकवि रचित

## श्रीविजयदानसूरि भास

आचार्य पुरन्दर श्री विजयदानसूरि, श्री आनन्दविमलसूरि के पट्टधर थे । तपागच्छ पट्टावली के अनुसार विजयदानसूरि ५७वें पट्टधर थे । इनका जन्म १५५३ जामला, दीक्षा १५६२, आचार्य पद १५८७ और १६२२ वटपल्ली में इनका स्वर्गवास हुआ था । मन्त्री गलराज, गान्धारीय सा. रामजी, अहमदावादीय श्री कुंवरजी आदि इनके प्रमुख भक्त थे । महातपस्वी थे । इनका प्रभाव खम्भात, अहमदाबाद, पाटण, महसाणा और गान्धारबन्दर इत्यादि स्थलों पर विशेष था । इनके द्वारा प्रतिष्ठित शताधिक मूर्तियाँ प्राप्त है । इनके सम्बन्ध में कवि भीमजी रचित स्वाध्याय का एक स्फुट पत्र प्राप्त है । जिसका माप २६ x ११ x ३ से.मी. है, पत्र १, कुल पंक्ति १५, प्रति अक्षर ५२ हैं । लेखन १७वीं शताब्दी है । भास की भाषा गुर्जर प्रधान है । कहीं-कहीं पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव की दृष्टिगत होता है । इस पत्र के अन्त में श्री विजयहीरसूरि से सम्बन्ध्ति दो सज्झायें दी गई है ।

इस कृति में विजयदानसूरि के सम्बन्ध में एक नवीन ज्ञातव्य वृत्त प्राप्त होता है । जिसका यहाँ उल्लेख आवश्यक है :-

विक्रम संवत् १६१२ में आचार्यश्री नटपद्र (संभवत: नडियाद) नगर पधारे । संघ ने स्वागत किया । वहाँ का सम्यक्त्वधारी श्रावक संघ बहुत हर्षित हुआ। साह जिणदास के पुत्र साह कुंवरजी के घर आचार्य ने चातुर्मास किया। अनेक प्रकार के धर्मध्यान हुए। मासक्षमण आदि अनेक तपस्याएं हुई। अनेक मार्ग-भूलों को मार्ग पर लाये। भादवें के महीनें में वहाँ के समाज ने अत्यधिक लाभ लेते हुए पुण्य का भण्डार भरा। तपागच्छाधिपति श्री आणन्दविमलसूरि के शिष्य विजयदानसूरि दीर्घजीवि हों।

श्री लक्ष्मण एवं माता भरमादे के पुत्र ने दीक्षा लेकर जग का उद्धार किया । भीमकवि कहता है कि इनका गुणगान करने से संसार सागर को पार करते हैं ।

इससे ऐसे प्रतीत होता है कि आचार्यगण विशिष्ट कारणों से श्रावक के निवास स्थान पर भी चातुर्मास करते थे।

रचना के शेष भाग में आचार्यश्री के गुणगौरव, साधना, तप-जप-संयम का विशेष रूप से वर्णन हैं।

विजयदानसूरि के माता-पिता के नामों का उल्लेख तपागच्छ पट्टावली में प्राप्त नहीं है, वह यहाँ प्राप्त है।

भक्तजन इसका स्वाध्याय कर लाभ लें इसी दृष्टि से यह भास प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री विजयदानसूरि भास

विणजारा रे सरसति करउ पसाउ ।

श्री विजयदानसूरि गाईइ गच्छनायकजी रे ॥वि. १ ॥

गुण छत्रीस भण्डार जंगम तीरथ जाण ॥वि. २ ॥

आव्यो मास वसन्त व्याहार विदेश गुरु करई ॥ग. वि. ३ ॥

जोया देश विदेश लाभ घणउ गुजर भणी ॥ग. वि. ४ ॥ मुगति थी के क... पूंजी पञ्च महाव्रत भरी ॥ग. वि. ५ ॥

पोठी वीस समाधि दुविध धर्म गुणी गुल भरी ॥ग. वि. ६ ॥ सुमति गुपति रखवाल ताहरइ आठइ साथी अति भला ॥ग. वि. ७॥ जयणा शंबल साथी जीता दाणी करवाय ते दोहिल्या ॥ग.वि. ८॥ संवत् सोल बार नटपद्र नयर पधारिया ॥ग. वि. ९॥

साहामइ संघ पहुँच तिहां श्रीसंघवति वेचइ घणउ ॥ग. वि. १०॥ घरि घरि उच्छव रङ्ग मङ्गल गाइं मानिनी ॥ग. वि. ११॥ साटइ पुण्य पवित्र तिहां नवतत्त्व वानी दाखवि ॥ग. वि. १२॥ जोई लेज्यो जाण पारखि हुइ ते परख यो ॥ग. वि. १३॥ बहुरा श्रावक सारा तिहां समकित धारी हरखिआ ॥ग. वि. १४॥ ताहारा टाडा मांहि मु... लति रोकडी वस्त घणी ॥ग. वि. १५॥ भरीया पुण्य भण्डार धन नडियाइ सोहामणुं ॥ग. वि. १६॥ साहा जिणदास सुतन्न साहा कुंवरजी घरी चउमासि रया ॥ग. वि. १७॥ आगली आव्यउं चउमासी वस्तणुं फरकुं थयुं ॥ग. वि. १८॥ तप जप जय पोसह नीम बहु उपधान ते आदर्यां ॥ग. वि. १९॥ मासखमण मन रङ्गी पाख छट्ठ अट्ठम घणा ॥ग. वि. २०॥ दिनि दिनि अधिकउ लाभ भूलां मारगि लाइया ॥ग. वि. २१॥ ताहरइ वस्तु अनेक भाईग होसी ते बहु रसि ॥ग. वि. २२॥ ताहरा विण जु मझारी खोटि न आवइ खरचतां ॥ग. वि. २३॥ ताहरइ तप भण्डार वावरता वाधइ घणूं ॥ग. वि. २४॥ दिन दिन बि परवेस उभयां पडिकमणु करुं ॥ग. वि. २५॥ नित उघराणी एह नाणुं नीमन नवकार-नुउं ॥ग. वि. २६॥ भाद्रवडइ घणउ लाभ पुण्य तणुं पोतुं भरिउं ॥ग. वि. २७॥ ताहारउ भलउ रेवाणउत्र विमल दान गुण आगलउ ॥ग. वि. २८॥ तपगच्छ केरउ राय श्री आणंदविमलसूरि गुरु भला ॥ग. वि. २९॥ तास सीस सुपवित्र श्री विजयदानसूरि जीवउ घणउं ॥ग. वि. ३०॥ धन-धन भावड़ तात धन धन भरमादे माउलि ॥ग. वि. ३१॥ धन-धन लखमण पुत्र जीणइ दीक्षा लई जग तारीयउ ॥ग. वि. ३२॥ भीम भणइ भगवंत भजसिंइ ते भजसि भवजल तयाँ ॥ग.वि. ३३॥ इति श्री विजयदानसूरि भास

 $\star\star\star$ 

#### (8)

श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

'हीरला' के नाम से समाज प्रसिद्ध जगदुरु श्रीहीरविजयसूरि के नाम से कौन अपरिचित होगा ? तपागच्छ पट्टावली के अनुसार ये ५८ वें पट्टधर थे और श्री विजयदानसूरि के शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १५८३ प्रह्लादनपुर में हुआ था। पिता का नाम कुंरा और माता का नाम नाथी था। संवत् १५९६ पत्तननगर में दीक्षा, १६०७ नारदपुरी (नाडोल) में पण्डित पद, १६०८ में पट्टधर प्राप्त हुआ था। संवत् १६५२ में इनका स्वर्गवास हुआ था। सम्राट अकबर प्रतिबोधक आचार्य के रूप में इनका नाम विश्व विख्यात है। जगदुरु पद सम्राट अकबर ने ही प्रदान किया था। इनका विस्तृत जीवन चरित्र जाननें के लिए पद्मसागर रचित जगदुरु काव्य, शान्तिचन्द्रोपाध्याय रचित कृपारस कोष, श्री देवविमल रचित हीरसौभाग्य काव्य, कविवर ऋषभदास रचित हीरविजयसूरिरास, श्री विद्याविजयजी रचित 'सूरीश्वर अने सम्राट' द्रष्टव्य है।

इन दोनों सज्झायों का स्फुट पत्र प्राप्त है, जिसकी माप २६ x ११ x ३ से.मी. है, पत्र १, कुल पंक्ति १३, प्रति अक्षर ५२ हैं। लेखन १७ वीं शताब्दी है। भास की भाषा गुर्जरप्रधान है। ये दोनों सज्झायें श्री विजयदानसूरि स्वाध्याय के साथ ही लिखी हुई हैं।

प्रथम सज्झाय का कर्त्ता अज्ञात है। पाँच गाथाओं की इस सज्झाय में कर्त्ता ने अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। केवल हीरविजयसूरि के गुणों का वर्णन है। प्रारम्भ में शान्तिनाथ सरस्वती देवी को प्रणाम कर श्री हीरविजयसूरि की स्तुति करूँगा, ऐसी कवि प्रतिज्ञा करता है। श्री आनन्दविमलसूरि के पट्टधर और श्री विजयदानसूरि के ये शिष्य थे। समता रस के भण्डार थे। भविक जीवों के तारणहार थे। नर-नारी वृन्द उनके चरणों में झुकता था। देदीप्यमान देहकान्ति थी। मधुर स्वर में व्याख्यान देते थे। अनेक मनुष्यों, देवों और देवेन्द्रों के प्रतिबोधक थे। चौदह विद्या के निधान थे। ऐसे श्री विजयदानसूरि के शिष्य करोडों वर्षों तक जैन शासन का उद्योत करें। इस कृति में सम्राट अकबर का प्रसङ्ग नहीं है। अत: यह रचना संवत् १६३९ के पूर्व की होनी चाहिए।

दूसरी सज्झाय के रचनाकार कौन हैं ? अस्पष्ट है। गाथा ९ के अन्त में लिखा है :- **'श्री विशालसुन्दर सीस पयम्पइ**' इसके दो अर्थ हो सकते हैं। श्री हीरविजयसूरि के शिष्य विशालसुन्दर ने इसकी रचना की है। अथवा विशालसुन्दर के शिष्य ने इसकी रचना की है। यह कृति भी सम्राट अकबर के सम्पर्क के पूर्व ही रचना है।

इसमें १० गाथाएं हैं । प्रत्येक में आचार्य के गुणगर्णों का वर्णन हैं । गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है :- श्री हीरविजयसूरि जैन शासन के सूर्य हैं, गुण के निधान हैं, तपागच्छसमुद्र के चन्द्रमा हैं । विनयपूर्वक मैं उनके चरणों को नमस्कार करता हूँ । देवेन्द्र के समान ये गच्छपति हैं । अपने विद्यागुण से इन्द्रजेता हैं । जग में जयवन्त हैं, महिमानिधान हैं, निर्मल नाम को धारण करने वाले हैं । शास्त्रसमूह के जानकार हैं । यम, नियम, संयम, विनय, विवेक के धारक हैं । लक्षणों से सम्पन्न हैं । सर्वदा ज्ञान का दान देते हैं । अपयश से दूर हैं । सुख-सौभाग्य की वल्ली हैं । नयनाह्लादक हैं । गुणों के धाम हैं । यशस्वी हैं । काम को पराजित करने वाले हैं । अन्य दर्शनी भी इन्हें देखकर आनन्द को प्राप्त होते हैं । सूत्र सिद्धान्तों के जानकार है । नरनारी व राजाओं को प्रतिबोध देने वाले हैं । क्रोधरहित हैं । उपशम के भण्डार हैं । शत्रुरहित हैं । भव्य जनों के सुखकारी हैं । गुरुप्रसाद से परमानन्द के धारक हैं । ऐसे पञ्चाचारधारक बृहस्पतितुल्य श्री हीरविजयसूरि जब तक मेरु पर्वत, गगन, आकाश, दिवाकर विद्यमान हैं, तब तक जिनशासन का उद्योत करें ।

दोनों सज्झायें प्रस्तुत हैं :-

## श्री हीरविजयसूरि सज्झाय

प्रणमी सन्ति जिणेसर राय, समरी सरसति सामिणि पाय । थुणसिउं मुझ मनि धरी आणन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥१॥ श्री आणन्दविमलसूरीसर राय, श्री विजयदानसूरि प्रणमुं पाय । तास सीस सेवइ मुनिवृन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥२॥ समतारस केरु भण्डार, भविक जीवनिइ तारणहार । पाय नमी नर नारि वृन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥३॥ देह कान्ति दीपइ जिम भाण, मधुरी वाणी करइ वखाण । पडिबोहि सुर नर देविन्द, गुरु श्री हीरविजय सूरिन्द ॥४॥ चउदह विद्या गुण रयणनिधान, वाणी सयल सनाव्या आण । श्री विजयदानसूरीसर सीस, प्रतिपउ एह गुरु कोडि वरीस ॥५॥ *(इति) श्री हीरविजयसुरि सज्झाय* 

## श्री विशालसुन्दर शिष्य रचित श्री हीरविजयसुरि सज्झाय

श्री जिनशासन भासन भाणू, श्री गुरु गिरिमा गुणह निहाणु । श्री तपगच्छ रयणायर चन्द, प्रणम्ं हीरविजयसूरिन्द ॥१॥ विनय करी तुझ प्रणमुं पाय, रायइ गच्छपति जिम सुरराय । विद्या गुणि जीतउ सुर इन्द्र, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥२॥ जगि जयवन्तउ महिम निधान, जयकारी निरमल अभिधान । शास्त्र तणा तुं जाणइं वृन्द, प्रणमुं हीरविजयस्रिन्द ॥३॥ यम नियमादिक संयमवन्त, विनय विवेक धरइ भगवन्त । लक्षण लक्षित जस मुझ चन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥४॥ दान ज्ञाननुं आपइ सदा, जगि अपयश पसरइ नवि कदा । सुख सोहग वल्लीनउ कन्द, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥५॥ नयणानन्दन गुरु गुणधाम, यशपूरित गुरु निजितकाम । दरसणि भवीअ लहिइ आणंद, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥६॥ सूत्र सिद्धान्त तणी परिं लहि, सुधी विधि भवियणनइ कहइ । रंजइ बहु नर नारी नरिन्द, प्रणमूं हीरविजयसूरिन्द ॥७॥ रीस-रहित उपशम-भण्डार,रिपूर्वाजत मनि जन सुखकार । गुरु पसाइं लहुं परमाणंद, प्रणमुं हीरविजयसूरिन्द ॥८॥ इय सुगुणु सुहाकर परम क्षमापर, श्री हीरविजयसूरिन्द वरो ।

वरवाणी मनोहर सुरगुरु पुरन्दर, सुन्दर पञ्चाचार धरो ॥ जा मेरु महीधर गगन दिवायर, तां चिर प्रतपउ एह गुरो । श्री विशालसुन्दर सीस पयम्पइ, जिनशासन उद्योत करो । । ९। । *इति श्री हीरविजयसूंरि सज्झाय* 

> C/o. प्राकृत भारती अकादमी १३-ओ, मेन गुरुनानक पथ, मालवीय नगर, जयपुर ३०२०१७

 $\star$ 

## प्राकृत जैन साहित्य में उपलब्ध 'धर्म' शब्द के विशेष अर्थों की मीमांसा इॉ. अनीता बोथरा

प्रस्तावना :

'धर्म' शब्द के बारे में पूरी दुनिया के विचारवंतों ने जितना विचार किया है उतना शायद किसी अन्य शब्द के बारे में नहीं किया होगा। वैदिक परम्परा के विविध धर्मशास्त्रों ने प्रारम्भ में ही इस शब्द की व्युत्पत्तियाँ, अर्थ तथा लक्षण देने का प्रयास किया है। प्राकृत जनसाधारण की भाषा होने के कारण 'धम्म' शब्द के बारे में प्राकृत जैन साहित्य में उसका जिक्र किन-किन विशेष अर्थों से किया है यह इस शोधलेख का उद्देश्य है। (अ) 'धृ' धातु से निष्यन्न विभिन्न अर्थछटा :

विविध शब्दकोषों के अनुसार धर्मशब्द 'धृ' क्रिया से निष्पन्न हुआ है । षष्ठ गण के आत्मनेपद में to live, to be, to exist इस अर्थ में कर्मणिरूप में इसके प्रयोग पाये जाते हैं । 'धृ-ध्रियते' का मतलब है, 'अस्तित्व में होना या धारण किया जाना ।' दशम गण के उभयपद में धरति तथा धारयति रूप बनते हैं । इसका अर्थ है, 'धारण करना' (to hold, to bear, to carry) । संस्कृत, प्राकृत तथा पालि तीनों भाषाओं के साहित्य में धर्म शब्द के जो विविध अर्थ पाये जाते हैं उनके मूल में एक मुख्य अर्थ है, लेकिन विविध प्रयोगों के अनुसार अर्थ की छटाएँ बदलती हुई दिखाई देती है ।

## (ब) 'धर्म' शब्द के रूढ (प्रचलित) अर्थ :

विविध कोश ग्रन्थों में 'धर्म' शब्द के रूढ, प्रचलित अर्थ प्राकृत तथा संस्कृत साहित्य के सन्दर्भ देकर, संक्षिप्त तरीके से दिये हैं। जैसे कि-धर्म (religion), शील (behaviour), आचार (conduct), पुण्य (merit), नैतिक गुण (virtue), पवित्रता (piety), अहिंसा (non-violence), सत्य (truth), कर्तव्य (law, duty), रीति (observance), दान (donation), दया (kindness), धनुष्य (bow) आदि विविध अर्थों में संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में धर्मशब्द के प्रयोग पाये जाते हैं। विविध व्यक्तिवाचक नाम भी वैदिक तथा जैन परम्परा में उपयोजित किये हैं।

(क) प्राकृत जैन साहित्य में उपलब्ध 'धर्म' शब्द के विशेषप्रयोग :

विविध दर्शनों के विचार प्रस्तुतीकरण की अलग-अलग परिभाषा होती है। जैन-दर्शन में कई बार अन्य दर्शनों द्वारा प्रयुक्त शब्द, अलग अर्थ में भी पाये जाते हैं। जैन-दर्शन के मूलभूत प्राचीन ग्रन्थ अर्धमागधी तथा शौरसेनी प्राकृत में लिखे हैं। उनमें प्रयुक्त 'धर्म' शब्द के प्रयोग से हमें विशेष अर्थ प्रतीत होते हैं।

(१) धर्म : वस्तु का स्वभाव

जैन दर्शन वास्तववादी दर्शन है। जो अस्तित्व में है उसे वस्तु कहते हैं। सब वस्तुएँ छह द्रव्यों में विभाजित की है। विश्व में इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इनको जैन परिभाषा में द्रव्य कहते हैं। ये षट्द्रव्य Empirical Realities हैं। इनके जो मूल स्वभाव है उन्हें 'धर्म' कहा है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार-

> गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो । भायणं सव्वदव्वाणं, नभं ओगाहलक्खणं ॥ वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो । नाणेण दंसणेणं च सुहेण य दुहेण य ॥<sup>3</sup>

यद्यपि अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि सामान्य गुण सब द्रव्यों में विद्यमान है तथापि प्रत्येक द्रव्य को एक मूलभूत लक्षण है। उसको ही जैन परिभाषा में 'धर्म' कहा है।

'धर्म' की इस व्याख्या से हम विश्व के समूचे सजीव, निर्जीव वस्तुओं के अस्तित्व की व्यवस्था लगा सकते हैं। जैसे कि जीव का स्वभाव उपयोग (Consciousness) है। यही उसका धर्म है। पानी का स्वभाव शीतलता है यही उसका धर्म है। अग्नि स्वभाव उष्णता है यही उसका धर्म है।

१. उत्तराध्ययनसूत्र २८.९

२. उत्तराध्ययनसूत्र २८.१०

#### डिसेम्बर २००७

'धर्म' शब्द के जो विविध अर्थ कोशकारों ने अंकित किये हैं उनमें स्वभाव यह अर्थ जरूर पाया जाता है लेकिन सामान्यीकरण की प्रक्रिया से धर्म का जो व्यापक अर्थ जैन दर्शन में दिया जाता है यह जैन दर्शन की उपलब्धि है। विविध प्राकृत जैन प्राचीन ग्रन्थों में 'धर्म' की यही व्याख्या दी है।<sup>3</sup>

(२) धर्म : ध्यान का एक प्रकार -

प्राचीन अर्धमागधी और शौरसेनी ग्रन्थों में 'संवर' क साधनों में 'तप' का निर्देश किया गया है। तप के प्रकार बताते समय 'अन्तरङ्ग तप' में 'ध्यान' की चर्चा की गई है।\* कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अनुसार ध्यान की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है।

अंतो-मुहुत्त-मेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं । झाण भण्णदि समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ॥' उपर्युक्त आगमों में ध्यान के चार प्रकार बतायें है ।' आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल । इसमें से शुभ या प्रशस्त-ध्यान का पहला प्रकार 'धर्म' है ।° स्थानाङ्ग, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि प्राकृत ग्रन्थों में धर्मध्यान शब्द में

३.	धम्मो वत्थुसहावो । कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८;
	वत्थुसहावं पइ तं पि स-परपज्जायभेयओ भिन्नं ।
	तं जेण जीवभावो भिन्ना य तओ घडाईया ॥ विशेषावश्यकभाष्य ४९५;
	अप्पु पयासर अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ।
	जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ ॥ परमात्मप्रकाश १.१०१

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
 झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भितरो तवो ॥ उत्तराध्ययनसूत्र ३०.३०

- ५. कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७०
- ६. चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा अट्टे झाणे, रोदे झाणे, धम्मे झाणे, सुके झाणे। स्थानांग ४.६०; समवायांग ४.२; भगवतीसूत्र २५.६००; उत्तराध्ययनसूत्र ३०.३५; मूलाचार ३९४ (५); ६६६(७); कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७१.
- अट्टं च रुद्दसहियं दोण्णि वि झाणाणि अप्पसत्थाणि ।
  धम्मं सुकं च दुवे पसत्थझाणाणि णेयाणि ॥ मूलाचार ३९४ (५)

उपयोजित 'धर्म' शब्द का स्वरूप इस प्रकार बताया है – वीतराग पुरुष की आज्ञा, खुद के दोष, कर्मों के विविध विपाक तथा लोक के स्वरूप का चिन्तन करना । किसी भी पारम्परिक तथा साम्प्रदायिकता से दूर हटकर इन चार शब्दों का प्रयोग 'धर्म' के अर्थ में करना जैन दर्शन की उपलब्धि है।

'धर्म' के अन्तर्गत जब लोकस्वरूप का चिन्तन आता है तब वैज्ञानिकों द्वारा एकाग्रचित्त से किये जाने वाले सब मूर्त-अमूर्त विषयक खोज इस शब्द में समाविष्ट हो जाते है। जैन-दर्शन में इस अर्थ में प्रयुक्त 'धर्म' शब्द जैनियों की वास्तववादी (realistic) विचारधारा का द्योतक है। (३) धर्म : बारह में से एक अनुप्रेक्षा-

दार्शनिक दृष्टि से 'अनुप्रेक्षा' भी 'संवर' का एक साधन है। अनुप्रेक्षा का मतलब है, 'वारंवार चिन्तन'। अर्धमागधी तथा शौरसेनी ग्रन्थों में वारंवार चिन्तन के लिए बारह प्रमुख मुद्दे दिये है।' 'धर्म' की अनुप्रेक्षा के बारे में विविध आचार्यों ने जो वर्णन किया है उसके आधार से हम कह सकते है कि श्रावक का तथा साधु का समग्र आचार इसमें वर्णित है।' वर्णाश्रमप्रधान वैदिक ग्रन्थों में जिस प्रकार सभी वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य किये जाते हैं उसी प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थों में श्रावक तथा साधु के आचारविषयक कर्तव्य ही 'धर्म' शब्द से उल्लेखित है। वर्णप्रधान, जातिप्रधान या लिङ्गप्रधान आचार न देकर सिर्फ श्रावक या साधु के आचारविषयक कर्तव्यों का 'धर्म'शब्द में समावेश करना जैनियों की वैचारिक, सामाजिक उदारता का द्योतक है।

- धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा-- आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए । स्थानांग ४.६५
- ९. अद्भुवमसरणमेगत्तमण्णा संसारलोगमसुचित्ता । आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोधिं च चिंतिज्जा ॥ मूलाचार ४०३ (५); ६९४ (८); द्वादशानुप्रेक्षा गा. २; कार्तिकेयानुप्रेक्षा गा. २, ३ २२ - व्यक्तिप्राय्येश्वर स. २०४ वे ५४४
- १०. कार्तिकेयानुप्रेक्षा गा. ३१८ ते ४८८

## धर्म : दस लक्षणों द्वारा आविष्कृत-

दस प्रकार के 'धर्मों' में क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आर्किचन्य तथा ब्रह्मचर्य इन गुणों का वर्णन अनेक प्राकृत ग्रन्थों में किया है।<sup>११</sup> इनके स्पष्टीकरणों से यह स्पष्ट होता है कि जैन दर्शन के अनुसार क्षमा, मार्दव आदि गुण बाहर से धारण नहीं किये जाते। शुद्ध आचारपद्धति के कारण ये सभी गुण अपने आप अन्त:करण में प्रकट होते हैं।

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है कि शुद्ध आत्मा संसारदशा में आवरणों से आवृत्त रहता है। चारित्र पालन के कारण जैसे-जैसे आवरण दूर हो जाते हैं वैसे-वैसे क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि लक्षणों के द्वारा आत्मा के मूल स्वभाव के प्रकटीकरण की प्रक्रिया शुरु होती है। प्रकटीकरण का यह सिद्धांत 'धर्म' शब्द से जोडना यह जैन दर्शन की उपलब्धि है। बाह्य धारणा से यह सर्वथा भिन्न है। यह दशलक्षण धर्म प्रतिनिधिक तथा सार्वकालिक भी है।

(५) धर्म : षट्द्रव्यों में से एक -

भारतीय दर्शनकारों ने आसपास दिखाई देने वाले विश्व की व्यवस्था द्रव्य या पदार्थों के द्वारा लगाने का प्रयास किया है। विशेषत: वैशेषिकदर्शन पदार्थों का या द्रव्यों का विचार सूक्ष्मता से करते हैं। जैन शास्त्र में द्रव्यों की संख्या छह बतलाई गयी है (Six substances; Six categories) वे द्रव्य है - जीवास्तिकाय, पुद्रलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल । काल छोडकर धर्म और अधर्म इ. पाँच अस्तिकाय द्रव्य हैं। जीव द्रव्य छोडकर बाकी पाँच द्रव्य अजीव है।<sup>११</sup>

- ११. दसविहो समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे । स्थानांग १०.१६; समवायांग-१०.१; द्वादशानुप्रेक्षा गा. ७०; कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८
- १२. अरूवि अजीवदव्वा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा– धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पदेसा, अधम्मत्थिकाए... भगवती २५.११

## जैन दर्शन के अनुसार धर्म और अधर्म द्रव्य-

इन दोनों शब्दों का व्यवहार में प्रयुक्त 'धर्म' और 'अधर्म' शब्द से सम्बन्ध नहीं है । ये सम्पूर्णत: पारिभाषिक शब्द है । 'द्रव्यसंग्रह' इस जैन शौरसेनी ग्रन्थ में नेमिचन्द्र कहते हैं –

## गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी । तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई ॥<sup>१३</sup>

जिस प्रकार मछली के गमन के लिए पानी सहायक होता है उसी प्रकार जीव और पुद्रल जब गतिशील होते हैं तो 'धर्मद्रव्य' सहायक होता है।

## ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।

## छाया जह पहियाणं गच्छंताणेव सो धरई ॥<sup>१४</sup>

जिस प्रकार एक पथिक के लिए वृक्ष की छाया ठहरने में सहायक होती है उसी प्रकार स्थितिशील पुद्रल और जीवों के स्थिति के लिए 'अधर्मद्रव्य' सहकारी होता है।

धर्म और अधर्म ये संकल्पनाएँ जैन दर्शन की आकाश संकल्पना से जुडी हुई है। धर्म और अधर्म ये दो तत्त्व समग्र आकाश में नहीं रहते वे आकाश के एक परिमित भाग में स्थित है उसे 'लोककाश' कहते हैं।<sup>१५</sup> इस भाग के बाहर चारों ओर आकाश फैला हुआ है उसे 'अलोकाकाश' कहते हैं। जहाँ धर्म-अधर्म द्रव्यों का संबंध न हो वह 'अलोक' और जहाँ तक

पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए... पोग्गलत्थिकाए । समवायांग ५.८ ते पुणु धम्माधम्मागासा य अरूविणो य तह कालो । खंधा देस पदेसा अणुत्ति विय पोग्गला रूवी ॥ मूलाचार २३२ (५);७१५(८) धम्माधम्मागासाणि पोग्गला कालदव्व जीवे य । आणाए सद्दहंतो समत्ताराहओ भणिदो ॥ भगवती आराधना ३५

- १३. द्रव्यसंग्रह १७
- १४. द्रव्यसंग्रह- १८
- १५. धम्मो अधम्मो आगास, कालो पुग्गल जंतवो । एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २८.७

#### डिसेम्बर २००७

संबंध हो वह 'लोक' । १६

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अमूर्त हैं। इन्द्रियगम्य नहीं हैं।<sup>१७</sup> आगम प्रमाण द्वारा प्राप्त हैं।

## उपादान और निमित्त कारण-

जगत में गतिशील और गतिपूर्वक स्थितिशील जीव और पुद्रल ये दो पदार्थ हैं । गति और स्थिति ये इन दोनों द्रव्यों के परिणाम और कार्य हैं । अर्थात् गति और स्थिति के उपादान कारण जीव और पुद्रल हैं फिर भी कार्य की उत्पत्ति में निमित्त कारण तो उपादान कारण से भिन्न ही हैं । इसीलिए जीव और पुद्रल की गति में निमित्त रूप धर्मद्रव्य और स्थिति में निमित्त रूप अधर्मद्रव्य है । इसी अभिप्राय से शास्त्र में धर्मास्तिकाय का लक्षण 'गतिशील पदार्थों की गति में निमित्त होना' और अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति में निमित्त होना' और अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति में निमित्त होना' कहा गया है ।<sup>१८</sup> धर्म-अधर्म असंकल्पना के बिना विश्व की स्थिति-

जड और चेतन द्रव्य की गतिशीलता तो अनुभव-सिद्ध है, जो दृश्यादृश्य विश्व के विशिष्ट अंग हैं। कोई नियामक तत्त्व न रहे तो वे अपनी सहज गतिशीलता से अनन्त आकाश में कहीं भी चले जा सकते हैं। इस दृश्यादृश्य विश्व का नियत संस्थान कभी सामान्य रूप से एक-सा दिखाई नहीं देगा, क्योंकि अनन्त पुद्रल और अनन्त जीव अनन्त परिणाम विस्तृत आकाश क्षेत्र में बे-रोकटोक संचार के कारण वह पृथक्-पृथक् हो जायेंगे। उनका पुन: मिलना और वापिस दिखाई देना दुष्कर हो जायेगा। यही कारण है कि उस गतिशील द्रव्यों की गतिमर्यादा और स्थितिशील द्रव्यों की स्थितिमर्यादा के नियामक तत्त्व को जैन दर्शन ने स्वीकार किया है।

- १६. धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये। आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ द्रव्यसंग्रह २०
- १७. अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं । कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ द्रव्यसंग्रह १५
- १८. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो । उत्तराध्ययनसूत्र २८.८

49

धर्म और अधर्म के कार्य ''आकाश' नहो कर सकता-

धर्म और अधर्म का कार्य 'आकाश' से सिद्ध नहीं हो सकता । आकाश को गति और स्थिति का नियामक मानने पर वह अनन्त और अखण्ड होने से जड तथा चेतन द्रव्यों को अपने में सर्वत्र गति और स्थिति करने से रोक नहीं सकेगा । इस तरह नियत दृश्यादृश्य विश्व के संस्थान की अनुपपत्ति बनी ही रहेगी । इसलिए धर्म-अधर्म द्रव्यों को आकाश से भिन्न एवं स्वतन्त्र मानना न्यायसंगत है ।<sup>१९</sup>

जीव के स्वतन्त्र सत्तारूप अस्तित्व के लिए धर्म-अधर्म की आवश्यकता-

जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक जीव का स्वतंत्र अस्तित्व है। संसारी जीव तो अपने कर्मों के अनुसार लोकाकाश में अनन्त बार जन्मता और मरता रहता हैं। सिद्ध जीव स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से लोकाकाश के अन्त तक जाते हैं। उनका सत्तारूप अस्तित्व वहाँ कायम रखने के लिए सिद्धशिला की परिसंकल्पना की है। ऐसे जीवों का अलोकाकाश में बे-रोकटोक संचार रोकने के लिए धर्म और अधर्म के क्षेत्र के ऊर्ध्व अन्त में इन जीवों का अस्तित्व माना है।<sup>२°</sup>

## धर्म शब्द का रूढ अर्थ एवं द्रव्यवाचक धर्म शब्द-

आपातत: ऐसा लगता है कि सदाचार एवं धार्मिक आचरण आत्मा की स्वाभाविक ऊर्ध्वगमनशीलता को (आध्यात्मिक प्रगति को) सहायक होता

१९. तत्त्वार्थसूत्र (सुखलाल संघवी) पृ. १२४. १२५

२०. बहीया उड्डमादाय नावकंखे कयाइ वि । पुव्वकम्मखयद्वाए इमं देहं समुद्धरे ॥ उत्तराध्ययनसूत्र ६.१३ (ऊर्ध्वं सर्वोपरिस्थितमर्थान्मोक्षम् उत्त. टीका. शान्त्याचार्य पृ. २६९ अ. २) णठ्ठठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दठ्ठा । पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ द्रव्यसंग्रह गा. ५१ ॥ आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि । उड्ढुंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥पंचास्तिकाय गा. ९९॥ जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं । तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाणा णत्थित्ति ॥पंचास्तिकाय गा. १००॥ जेर्स उड्रा उ गइ ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धि । सिरिसिरिवालकहा १२३०

## डिसेम्बर २००७

है। तथा दुराचार एवं अधार्मिक आचरण आत्मा को संसार में रोकता है। रूढ अर्थ में धर्म और अधर्म इसके कारणभूत हैं। लेकिन जैन दर्शन में इतने मर्यादित अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। प्राचीन से प्राचीन प्राकृत आगमों में 'जीव और पुद्रल के गति और स्थिति को सहाय करनेवाले' इसी अर्थ में धर्म-अधर्म द्रव्यवाचक शब्दों की अवधारणा हुई है। कदाचित् शब्द साम्य होगा लेकिन धर्म और अधर्म ये द्रव्य निश्चित ही किसी वैज्ञानिक संकल्पना के वाचक है।

## धर्म-अधर्म में निहित वैज्ञानिक संकल्पना-

जैन दर्शन की वैज्ञानिक दृष्टि से चिकित्सा करनेवाले आधुनिक विचारवंतों ने धर्म-अधर्म संकल्पना का भी विचार वैज्ञानिक दृष्टि से सामने रखा है । कई विचारवंत सूचित करते हैं कि यह एक प्रकार की ऊर्जा (energy) है । लेकिन हमें लगता है कि यह ऊर्जा नहीं है । जब प्राचीन समय के जैन दार्शनिकों ने पर्वत, प्रासाद जैसी स्थिर वस्तुएँ, खुद होकर हलचल करनेवाले प्राणी तथा आकाश में नियमित रूप से गतिशील होनेवाले प्रह, तारे आदि देखे होंगे तभी उनके मनके इनके गतिशील और स्थितिशीलता बारे में धर्म और अधर्म नाम की अवधारणा प्रस्फुरित हुई होगी । वह अवधारणा आकाश और काल से निश्चित रूप से अलग है । वैज्ञानिक परिभाषा में जिसे गुरुत्वाकर्षण शक्ति (gravitational force) कहते हैं, उसी शक्ति का अस्तित्व उन्होंने 'धर्म-अधर्म' इस परिभाषा में व्यक्त किया होगा।

आज भौतिकी विज्ञान के इतिहास में यह लिखा हुआ है, कि सृष्टि के नियमों की खोज करते हुए 'सर आयझेक न्यूटन' को इस विशिष्ट शक्ति का एहसास हुआ । आगे जाकर अनेक वैज्ञानिकों ने इस संकल्पना का विकास किया । इस नियम पर आधारित अनेक उपकरण बनायें । लेकिन जैन दर्शन ने जब प्राचीन काल में धर्म-अधर्म नामक द्रव्यों की कल्पना की होगी उस समय भी उन्हें इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का ही एहसास हुआ होगा । विशेष बात यह है कि जैन दर्शन के सिवाय अन्य किसी भी पाश्चात्य-पौर्वात्य दर्शनों ने द्रव्य के स्वरूप इसका उल्लेख नहीं किया है ।<sup>?१</sup> दार्शनिक मान्यता के अनुसार धर्म-अधर्म आदि द्रव्यों का जितने क्षेत्र में अस्तित्व है उसे लोकाकाश कहते हैं । उसके परे अलोकाकाश है। धर्म-अधर्म को अगर गुरुत्वाकर्षण शक्ति माना जाय तो हम यह कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र लोकाकाश है और उसके बाहर का क्षेत्र अलोकाकाश है ।

## उपसंहार

'धर्म' शब्द के बारे में पूरी दुनिया के विचारवंतों ने जितना विचार किया है उतना शायद किसी अन्य शब्द के बारे में नहीं किया होगा । जैन प्राकृत साहित्य में कौन-कौन से विशेष अर्थों से 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया है यह इस शोध-लेख में अंकित किया हैं ।

 'वत्थुसहावो धम्मो' इस व्याख्या से जैन दर्शन ने विश्व के समूचे सजीव-निर्जीव वस्तुओं के अस्तित्व की व्यवस्था लगाई है । इसी वजह से जैन-दर्शन की गणना वास्तववादी दर्शनों में की जाती है ।

- धर्मध्यान शब्द में उपयोजित 'धर्म' शब्द किसी भी साम्प्रदायिकता से दुर हटकर एक वैश्विक-धर्म की और अंगुलीनिर्देश करता है ।
- \* 'लोकस्वरूप का चिन्तन करना' भी जैन दर्शन के अनुसार 'धर्मध्यान'
  है । वैज्ञानिकों द्वारा एकाग्रचित्त से किये जानेवाले खोज भी इसमें समाविष्ट हैं ।
- किसी भी तरह के क्रियाकाण्ड को धर्म न कहकर प्रशस्त चिन्तन रूप धर्मानुप्रेक्षा में 'धर्म' शब्द का प्रयोग करना, जैन दर्शन की विशेष उपलब्धि है।
- \* क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि प्रशस्त गुणों को 'धर्म' कहा है । शुद्ध आचार से ये गुण आत्मा में अपने आप प्रकट होते हैं । सद्गुणों के इस सहज आविष्कार को जैन दर्शनने 'धर्म' कहा है ।
- \* पाँच अस्तिकाय अथवा षड्द्रव्यों में धर्म, अधर्म तत्त्वों का समावेश

२१. Ethical doctrines in Jainism, कमलचंद सोगाणी

करना जैन दर्शन की विशेषतम उपलब्धि है। जैन-दर्शन ने जब प्राचीन काल में धर्म-अधर्म नामक द्रव्यों की कल्पना की होगी, उस समय भी उन्हें इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का एहसास हुआ होगा और उन्होंने आकाश और काल इन दोनों तत्त्वों के अतिरिक्त गतिस्थिति-नियामक-शक्ति की संकल्पना की होगी।

## $\star\star\star$

Research Assistant-Sanmati-Teerth, Research Institute of Prakrit & Jainology, Recognised by Pune University, Firodiya Hostel, BMCC Road, Pune-4.

Jain Education International

# अञ्जना : वाल्मीकि और विमलसूरि के रामायणों में वर्णित

## डॉ. कौमुरी बलदोटा

#### प्रस्तावना

प्राकृत साहित्य के इतिहास का अध्यापन करते समय जैन महाकवि विमलसूरि का 'पउमचरियं' नाम का पहला जैन रामायण सामने आया । 'अञ्जनापवनञ्जयवृत्तान्त' सूक्ष्मता से पढा । अञ्जना के जीवन में आये हुए स्थित्यंतर देखकर मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वाल्मीकि रामायण में यह कथा किस प्रकार आयी होगी ? दोनों रामायणों में अञ्जना की व्यक्तिरेखा का प्रस्तुतीकरण अलग अलग दिखाई दिया । कालक्रम की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण प्रथम है । विमलसूरि ने लगभग २००-३०० वर्ष के पश्चात् जैन रामायण लिखो ऐसा इतिहासकार मानते हैं । विमलसूरि ने अञ्जना की व्यक्तिरेखा में जो बदलाव किये हैं, उसकी पृष्ठभूमि जैन तत्त्वज्ञान तथा आचार में निहित है । इसी का स्पष्टीकरण इस शोधलेख में देने का प्रयास किया है ।

## १. दोनों कथाओं का स्थान

अञ्जना की कथा किष्किन्धाकाण्ड में विस्तार से तथा उत्तरकाण्ड में अतिसंक्षेप से आयी है।<sup>१</sup> किष्किन्धाकाण्ड में वान श्रेष्ठ जाम्बवान, हनुमन्त को प्रेरणा देते समय हनुमान को जन्मवृत्तान्त कहते हैं।<sup>२</sup> उत्तरकाण्ड में अगस्त्य ऋषि राम को हनुमान के बचपन का वृत्तान्त कहते हैं।<sup>३</sup>

'पउमचरियं' में अनन्तवीर्य मुनि के धर्मोपदेश के अन्तर्गत अञ्जना

- १. वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धा-काण्ड, सर्ग ६६ वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३५-३६
- अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम् । जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६६, श्लोक १
- यदि वास्ति त्वभिप्राय: संश्रोतुं तव राघव । समाधाय मति राम निशामय वराम्यहम् ॥ उत्तरकाण्ड, सर्ग ३५, श्लोक १८

का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है । १५, १६, १७ तथा १८ इन चार उद्देशों में अञ्जनासुंदरी का उपकथानक लालित्यपूर्ण रीति से प्रस्तुत किया है ।\*

दोनों रामायणों में हनुमान के जन्म तथा बचपन का वृत्तान्त है। वाल्मीकि 'अञ्जना' को हनुमान की माता के रूप में ही वर्णित करते हैं । अञ्जना के जीवन का वृत्तान्त सविस्तर नहीं देते । विमलसूरि अञ्जना के जीवन में घटी हुई अनेक व्यामिश्र घटनाओं का बयान करते हैं । २. दोनों रामायणों में वर्णित अञ्जना का कुल, माता-पिता, जन्म तथा वरसंशोधन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार अञ्जना पूर्वभव में 'पुञ्जिकस्थला' नाम की विख्यात अप्सरा थी। ऋषि की शापवाणी से वह इस जन्म में वानर कुल में जन्मी थी। तथापि उसमें स्वेच्छानुसार रूप धारण करने का सामर्थ्य था। अञ्जना 'कुञ्जर' नामक वानराधिपति की कन्या थी। वह अत्यंत रूपवान थी।'

विमलसूरि के अनुसार वह महेन्द्र और हृदयसुन्दरी इन विद्याधर युगल की सबसे छोटी रूपवती कन्या थी।<sup>६</sup> महेन्द्र राजा के मन्त्रियों ने अञ्जना

۷.	अंजणासुंदरी वीवाहविहाणाहियारो, पउमचरियं, उद्देश १५
	पवणंजयअंजणासुन्दरीभोगविहाणाहियारो, पउमचरियं, उद्देश १६
	अंजणाणिव्वासण-हणुउप्पत्तिअहियारो, पउमचरियं, उद्देश १७
	पवणंजय-अंजणासुंदरीसमागमविहाणं, पउमचरियं, उद्देश १८
ધ.	अप्सराप्सरसां श्रेष्ठा विख्यातपुञ्जिकस्थला ।
	अञ्जनेतिपरिख्याता पत्नी केसरिणो हरे: ॥
	विख्याता त्रिषु लोकेषु रुपेणाप्रतिमा भुवि ।
	अभिशापादभूतात कपित्वे कामरूपिणी ॥
	दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मन: ।
	किष्किन्धा-काण्ड, सर्ग ६६, श्लोक क्र. ८, ९, १० की पहली पंक्ति
६.	अह हिययसुंदरीए, महिन्दभज्जाएँ पवरपुत्ताणं ।
	जायं सयं कमेणं, अरिन्दमाई सुरूवाणं ॥
	भइणी ताण कणिट्ठा, वरअञ्जणसुन्दरि त्ति नामेणं ।
	रूवाणि रूविणीणं, होऊण व होज्ज निम्मविया ॥
	पउमचरियं, उद्देश १५, गाथा क्र. ११~१२

के विवाह के विविध प्रस्ताव रखें। यद्यपि महेन्द्र विद्याधर रावण का सामन्त था, तथापि रावण तथा उसके पुत्र अनेक युवतियों के स्वामी होने के कारण उसने यह प्रस्ताव ठुकराया। विद्युत्प्रभ-कुमार विद्याधर थे। तथापि उनकी सांसारिक विरक्ति के कारण महेन्द्र ने यह प्रस्ताव भी नहीं स्वीकारा। प्रल्हाद और कीर्तिमती इस विद्याधर-युगल का पुत्र 'पवनञ्जय' राजा महेन्द्र को अञ्जना के लिए अनुरूप लगा। विवाह का प्रस्ताव मान्य हुआ।<sup>9</sup>

वाल्मीकि तथा विमलसूरि दोनों ने अञ्जना के अनुपमेय सौंदर्य का उल्लेख किया है।

विमलसूरि ने उसे 'शापित कन्या' नहीं कहा है । कथानक रसपूर्ण होने के लिए अञ्जना के मातापिता, वरसंशोधन आदि के बारे में विस्तार से कहा है । अञ्जना को 'वानरी' न मानकर वानरवंश की विद्याधर कन्या कहा है । विमलसूरि के अनुसार रामायण के वानर पूँछवाले वानर प्राणी नहीं है । 'वानर' उनके वंश का नाम है और उनके ध्वजपर 'वानर' का चिन्ह' है।' हनुमान के वानरवंश की समीक्षा करते हुए पं. श्री. दा. सातवलेकरजी ने भी अपनी किताब में विमलसूरि के इस मत की पुष्टि की है ।' यद्यपि वाल्मीकि ने 'अञ्जना' को रूपपरिवर्तनविद्या की धारिणी माना है तथापि

- ७. पउमचरियं, उद्देश १५, गाथा क्र. १५-२७
- ८. जं जस्स हवइ निययं नरस्स लोगम्मि लक्खणावयवं । तं तस्स होइ नामं, गुणेहिं गुणपच्चयनिमित्तं ॥ इक्खूण य इक्खागो, जाओ विज्जाहराण विज्जाए । तह वाणराण वंसो,वाणरचिंधेण निव्वडिओ ॥ वाणरचिंधेण इमे, छत्ताइनिवेसिया कई जेण । विज्जाहरा जणेणं, वुच्चंति उ वाणरा तेण ॥ पउमचरियं, ६.८६, ८९-९०
- ९. वानरजाति का बन्दरों जैसा वेष था। हनुमान जब रामलक्ष्मण से मिलने के लिए ऋष्यमूक पर्वत से नीचे उतरा तब उसने तपस्वी का वेष धारण किया। बाद में पुनः भिक्षु रूप छोड़कर वानर रूप धारण कर लिया। पृ. ४०४, श्रीरामायण महाकाव्य (पंचमभाग), किष्किन्धा-काण्ड, पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सन् १९५२

विमलसूरि ने उसे विद्याधरी मानना ही समुचित समझा है। ३. वाल्मीकि रामायण में 'केसरी' तथा जैन रामायण में 'पवनझय'

वाल्मीकि कहते हैं, 'कुंजर नामक वानर की कन्या अञ्जना 'केसरी' नामक वानरयुवक की पत्नी बनी । एक बार अञ्जना सुंदर स्त्री का रूप धारण कर के गिरिविहार कर रही थी । 'वायु' ने उसे देखा । उस पर मोहित हुआ । उसने अञ्जना को आलिंगन दिया । अञ्जना संभ्रान्त होकर बोली, 'मुझ पतिव्रता का पातिव्रत्य यह कौन भ्रष्ट कर रहा है ?' वायु बोला, 'हे यशस्विनी, मैंने मानसिक उपभोग लेकर मेरा तेज तुझमें रखा है । तुझे वीर्य, धैर्य, बुद्धिसम्पन्न, तेजस्वी पुत्र होगा । वेग में तथा लंबी छलांग लगाने में वह मेरे जैसा होगा ।' अञ्जना सन्तुष्ट हुई । एक गुफा में हनुमान को जन्म दिया । इस प्रकार हनुमान वायु का औरस पुत्र (Biological father) तथा केसरी का क्षेत्रज (legal father) पुत्र था ।<sup>१</sup>°

यह पूरा घटनाक्रम विमलसूरि को तार्किक दृष्टि से असम्भवनीय लगा। जैसे कि-

- (१) वानरी अञ्जना द्वारा सुन्दर स्त्री का रूप ग्रहण करना,
- (२) पंचमहाभूतों में से एक होनेवाले वायु ने आलिङ्गन देना,
- (३) मानसिक उपभोग के द्वारा अञ्जना के गर्भ का आधान करना,
- (४) अञ्जना ने खुद को 'पतिव्रता' कहना तथा गर्भ के आधान से संतुष्ट होना,
- (५) केसरी के घर न जाकर एकान्त गुफा में प्रसूत होना,
- (६) केसरी ने वायु के औरस पुत्र को खुद के क्षेत्रज ज्येष्ठ पुत्र
  के स्वरूप में स्वीकारना ।

विमलसूरि ने अपने ढंग से कथा की अतार्किकता दूर करके अञ्चना और पवनञ्जय का वृत्तान्त इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

अञ्जना और पवनञ्जय का विवाह उनके मातापिता ने तय किया। विवाह तीन दिन के भीतर ही करना था। सौन्दर्यवती अञ्जना का विरह

१०. किष्किन्धा-काण्ड, सर्ग ६६ श्लोक क्र. १०-३०

पवनञ्जय को सहन नहीं हुआ । वह उसको मिलने गया । वहाँ अञ्जना और सखियों में विद्युत्प्रभकुमार की बातें चली थी। अञ्जना ने प्रतिवाद न करने के कारण चंचल वृत्ति का पवनञ्जय क्रोधित हुआ । रूठ कर सैन्यसहित कूच करने लगा । मातापिता ने समझा-बुझाकर विवाह रचाया । पहली ही रात में वह अञ्जना का तिरस्कार करके चला गया। बाईस साल तक अञ्जना शीलपालन करती हुई उसकी राह देखती रही । किसी कारणवश अचानक विरहव्यथा से व्याकुल पवनञ्जय सिर्फ एक रात के लिए अञ्जना के पास आया । उनका मिलन हुआ । किसी को सूचित किये बिना पवनञ्जय चला गया। गर्भवती अञ्जना पर पवनञ्जय के किसी स्वजन ने विश्वास नहीं किया। चारित्रहीनता का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल दिया । अञ्चना के मातापिता ने भी धिकारा । अपनी प्रिय सखी के साथ घूमती हुई अञ्जना ने एक गुफा में बालक को जन्म दिया । गुफा में पधारे अमितगति मूनि के साथ अञ्जना ने बातचीत की । अपना दुःख बताया । मुनि ने पूर्वजन्म के बारे में कहकर सान्त्वना दी । अञ्जना के मामा अञ्जना की खोज करते हए वहाँ पहुँचे । मामा उन तीनों को अपने हनुरुहपुर नामक नगर में ले गये । पवनझय भी फिर से अझना की विरह-व्यथा से व्याकुल होकर उसे ढूँढने-खोजने लगा। पवनजंय की खोज में निकले हुए मामा ने उसे देखा। दोनों हनुरुहपुर वापस गये । अञ्जना और पवनज्जय का मिलन हुआ । ११

अञ्जनापवनञ्जयवृत्तान्त का प्रस्तुतीकरण करते समय विमलसूरि ने निम्नलिखित बातें ध्यान में रखीं होगीं-

- \* 'वायु और 'केसरी' इन दोनों व्यक्तिरेखाओं के स्वभावविशेष एकत्रित करके विमलसूरि ने 'पवनझय' का व्यक्तिचित्रण किया है। अझना पर मोहित होना, अचानक उसके कक्ष में पधारना, बातें सुनकर क्रोधित होकर निकल जाना, विवाह कर के तत्काल परित्याग करना, बाईस साल दूर रहना, सिर्फ एक रात के लिए वापस आना, उसकी विरहव्यथा से व्याकुल होकर अन्नत्याग करना। इन सब घटनाओं की उत्पत्ति लगाने के लिए विमलसूरिने 'चंचलता' को पवनझय के स्वभाव का
- ११ं. पउमचरियं, उद्देश १५, १६, १७, १८

स्थायीभाव माना । पवनञ्जय के लिए 'पवनगति' तथा 'पवनवेग' इन दोनों नामों का भी प्रयोग किया है । पुरुषों के चंचल स्वभाव के कारण स्त्रियों को जो भुगतना पड़ता है, उसे मानों प्रतीकस्वरूप ही 'अञ्जना' का आयुष्य चित्रित किया है ।

- अञ्जना को 'पतिव्रता' मानना और उसने वायु के द्वारा पुत्र होने पर संतुष्ट होना, ये दोनों घटनायें अञ्जना के चारित्र्य के बारे में प्रश्न उपस्थित करते हैं। पति के रूप में सिर्फ 'पवनञ्जय' को प्रस्तुत करके विमलसूरि ने अञ्जना का कलंक दूर किया है।
- भ पति के द्वारा परित्यक्ता स्त्री की निराधार अवस्था को भी उन्होंने तत्कालीन सामाजिकता से अधोरेखित किया है ।
- निरपराध अञ्जना के दु:ख का स्पष्टीकरण पूर्वकर्म तथा कर्मसिद्धांत के द्वारा किया है ।
- 'मामा' के रूप में मानवीय स्वभाव के अच्छे अंश पर भी प्रकाश डाला है।
- \* वाल्मीकि ने हनुमान को वायु का 'औरस' तथा केसरी का 'क्षेत्रज' पुत्र मानकर यह बात वहीं छोड दी । उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया । विमलसूरि ने 'केसरी' और 'वायु' दोनों अलग व्यक्तिरेखायें न मानकर इस कलंक को हटाने का प्रयास किया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि विमलसूरि का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण मानवीय तथा सहृदयता का था।
- वाल्मीकि रामायण में केसरी और अञ्जना के जीवनवृत्तान्त के सब छूटे हुए कच्चे धागे एकत्रित करके विमलसूरि ने एक उपकथानक ठीक तरह से प्रस्तुत किया। इस कथा से विमलसूरि ने अञ्जना का सतीत्व उजागर किया।
- अपभ्रंश में कवि स्वयम्भूद्वारा विरचित 'पउमचरिउ' में अंजनाकथा के प्रस्तुतीकरण में प्राय: विमलसूरि का ही अनुकरण किया है । कवि स्वयम्भूदेव का काल दसवीं शताब्दी है ।

### उपसंहार

वाल्मिकी-रामायण में उपस्थित असम्भाव्य घटनायें तथा अद्भुत और अतार्किक अंशों को दूर करके तार्किक आधार पर उसकी प्रतिष्ठा करना यही विमलसूरिकृत जैन रामायण का उद्दिष्ट है । इसी उद्दिष्ट का अनुसरण करके विमलसूरि ने अञ्जना की कथा प्रस्तुत की है ।

विमलसूरि के अञ्जनापवनञ्जयवृत्तान्त की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-\* किसी अद्भुत वर या शाप का आधार न लेना ।

 कथानक प्रवाहित होने के लिए कृत्रिमता का आधार न लेकर मानवीय स्वभाव के विशेषों का उपयोजन करना ।

\* सती अञ्जना का चरित्र निष्कलङ्कता से प्रस्तुत करना ।

- निरपराध अञ्जना के दुःखों का कर्मसिद्धान्त के आधार से स्पष्टीकरण देना ।
- \* स्त्रियों के प्रति मानवीय तथा सहृदय दृष्टिकोण अपनाना ।
- \* प्रसंगोपात्त सामाजिक तथ्यों पर प्रकाश डालना ।

उपर्युक्त बातों का आधार लेकर विमलसूरि ने वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत संक्षिप्त एवं त्रुटित, अञ्जनाकथा को एक परिपूर्ण उपकथानक के रूप में प्रस्तुत किया है ।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

- १. पउमचरियं, विमलसूरि, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद
- २. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर
- श्रीरामायण महाकाव्य, किष्किन्धा-काण्ड, पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर पारडी (जि. सूरत), १९५२
- ४. भारतीय संस्कृति-कोश

Research Assistant, Sanmati-Teerth, Research Institute of Prakrit & Jainology, Recognised by Pune University, Firodiya Hostel, BMCC Road, Pune-4.

## Dānalaksaņa or Dānasāsana by Śrivasu-pūjyarsi

A Jain Samskrta work on donations with Kannada commentary

### Jagannatha

Once, some five years ago, while checking the shelves of our library (Oriental Research Institute, Mysore) I found a work unexpectedly in a manuscript hitherto unnoticed. It is in Kannada script. On closer glance I came to know it is detailed description on donations. It is a Jaina work. The language is Samskrta. The whole work in verses of various metres. Avatārikā (link sentences) is interwoven at the beginning of some verses. It has a Kannada commentary. The script is Kannada. Usually so called Kannada commentaries on Samskrta works give only word to word meaning and nothing else. But fortunately for us, this Kannada commentary is very eleborate and explantory. It is interesting to note that in some places even Kannada verses are interwoven in various metres like Mahāsragdharā. Whether these are sangrahakārikās composed by commentator himself or simply he quotes from other sources can be decided only when critical edition of the present work will be prepared.

Some verses of Samskita are noticed in the commentary. Obviously, they are quotations.

Some of the verses don't have commentary. The commentator might have not observed any important thing or difficult words in them. Hence he left these uncommentated.

The name *Dānalakṣaṇa* is seen in the commentary of second verse. However, the name *Dānaśaṣaṇa* is seen in the last verse. Only critical edition will answer the question which name is actually put for the work.

Name of the work : Dānalaksaņa or Dānaśāsana Repository of the work : Oriental Research Institute, Mysore.

Number of the Ms : Because of some unavoidable problems, the ms. is not numbered so far. Name of the author : Śrivāsu-pūjyarsi Name of the Kannada commentary : Not mentioned. Name of the commentator : Not mentioned. Name of the scribe : Pāta. The person for whom the work is transcribed : Adivarnin. Language of the original : Samskrta. Language of the commentary : Kannada. Script : Kannada Size : 53.5 x 5 c.m. No. of folios : 1-172No. of lines per folio : 8 No. of letters per line : 88 Extent : Complete Condition : Normal Date of copying : vijyābhyudaya samvat śālivāhana śakavarsa [-] neya durmukhi nāma samvatsara āsādhasuddha pañcamī kujavāra Name of the scribe : Not mentioned. Legibility of handwriting : Very legible. Correct or incorrect : Not flawless. Oftentimes we meet several scribal errors. I am grateful to Dr. H. P. Devaki, Director, ORI,

Mysore for giving permission to take notes from the work. Beginning (Upakrama) :

श्रीब्रह्मणे नमः । निर्विघ्नमस्तु ।

- यस्य पादाब्जसद्ग्रन्थाघ्राणनिर्मुक्तकल्मषाः ।
  ये भव्याः सन्ति तं देवं जिनेन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥
- दानं वक्ष्येऽथ वारीव सस्यसंपत्तिकारणम् । क्षेत्रोप्तं फलतीव स्यात् सर्वस्त्रिषु समं सुखम् ॥
- शुद्धसदृष्टिभिः शुद्धपुण्य(ण्यो)पार्जनलम्पटैः । सार्धं ब्रूयादिमं ग्रन्थं नेतरैस्तु कदाचन ॥

#### डिसेम्बर २००७

क्रमकृताकृतदान-कृषिदानयुगफलमाह -

- ४. दत्वा द्वित्रिगुणाकरं च सकलां विष्टिं च कृत्वा प्रजाः सद्द्रव्यव्ययमात्तवप्रनिचये सम्यक्फले निष्फले । प्रत्यब्दं बहु सुक्रियाः क्रमकृतास्तांस्तांश्च ताः कुर्वते मुक्त्वा सत्क्रममुत्तमं सुखभुजो वाञ्छन्ति जैनास्तथा ॥ [कन्नडव्याख्यायाम् उद्धृतः श्लोकः – स्वात्तक्षेत्रसुसंस्कारकरणां साधुचेतसाम् । अर्थव्ययं प्रजा नॄणां कुर्वते नेतरस्य च ॥]
- ५. धर्मकारणपात्राय धर्मार्थं येन दीयते ।
  यद् द्रव्यं दानमित्युक्तं तद्धर्मार्जनपण्डितै: ।।
- ६. सामान्यं दोषदं दानमुत्तमं
  जघन्यं सर्वसंकीर्णकारुण्यान्मध्यमं तथा । चेत्य(तथ?)मष्टधा (?)
- ७. राजा निजारिकृतिकृतसंगरवारणार्थं प्रस्थापितं बलमिवाऽवति सर्वमन्त्रै: । जैनोत्सवेऽरिकृतविघ्नविनाशकेभ्य: सामान्यमुक्तमखिलं सुजनै: प्रदत्तम् ॥
- ८. पात्रभेदाननालोच्य जैनान् धर्मेक्षकानपि । सत्कृत्याऽन्नादिकं त्यक्तं दानं सामान्यमुच्यते ॥ [उक्तं च – अर्थाद् द्रव्यं च को भूत्वाऽप्यवितुं स्वबलं तथा । दत्ते यथोचितं द्रव्यं दानं सामान्यमीरितम् ।]
- निजपापार्जितं द्रव्यं द्विजेभ्यो ददते नृपा: । तैर्नेष्ट राजभिर्विप्रा: दानं दोषदमुच्यते ॥
- १०. श्रीमज्जिनेन्द्रसाकल्यरूपधारिमुनीश्वरान् । सत्कृत्य दत्तमन्नादिदानमुत्तममीरितम् ॥
- ११. दत्तं मध्यमपात्राय दानं मध्यममुच्यते । द्रव्यं जघन्यपात्राय जघन्यं दानमुच्यते ॥

- १२. जिनोत्सवसमाहूतपात्रापात्राधिकानपि । सत्कत्य दत्तमन्नादिदानं संकीर्णमीरितम् ॥
- १३. रोगिणं निगलितं च बाधितं दण्डितं क्षुधितमम्बुपातितम् । वह्निपीडितमवत्यवेक्ष्य कारुण्यदानमिदमीरितं बुधै: ॥
- १४. जैनबन्धुयुगसेवनातुरान् बन्धवाहकजनानपि निजान् । तर्पयन्त्यशनवीटिकाभिरौचित्यदानमिदमुक्तमार्हतै: ॥ [यो दत्ते गायकादिभ्य: काले काले यथोचितम् । ज्ञात्वाऽपवादभित्यना (?) दानमौचित्यमीरितम् ]
- १५. यो राजा वधकोऽस्त्रतो धनहरोऽन्यस्त्रीहरः सस्पृहः सन्तस्तद्विषयं श्रयन्ति न सदा नो विश्वसन्तीह तम् । तस्मै नो ददते धनादिचयदं तद्वद् गुणी धार्मिको दाता दानफलान्वयाः खलु तदा रत्नानि भाग्यानि च ।
- End (Upasamhāra) :

वञ्चनां स्वामिदेवार्थे पित्राद्यर्थे करोति य: । सोऽसाध्यक्षयरोदी(गी?)व क्रमान्मुञ्चति जीवनम् ॥ परद्रव्यमा(मपा?)हृत्य पत्रव्याजाच्च(?) जीवति । इहाऽमुत्र निजीव:(?) स्याद् विष्टिकारो यथा जन: ॥ शुचित्वत: सर्वशुभोदय: स्यादनिष्टकर्माणि न चाऽऽश्रयन्ति । सुगन्धिगेहं न विशन्ति नीलास्तत: कृतज्ञा: शुचितां लभेरन् ॥ अशुचित्वं करोत्येवाऽशुभकर्माणि संस्रवम् । दुर्गन्धिमन्दिरं नीला: प्रविशन्ति यथा तथा ॥ जिनमुनिसमाधिसमये चित्तनिरोधं करोति यस्तस्य । गेहपुरनाश: स्वस्थानोच्चाटनं भवेन्नियमात् ॥ आसन्ने यत्र तिष्ठन्ति राजानो गुरवो बुधा: । तत्र तत्राऽऽसने जैना: [न] वसन्त्यघभीरव: ॥

### डिसेम्बर २००७

विदुषा गुरुणा राज्ञा साकमेकासने बुधाः । तत्तुल्यधर्मरहिता न स्थातव्याः कदाचन ॥ .......(केचन श्लोका मया न लिखिता अस्फुटत्वात् ।) संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् । देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतुं शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः । Colophon (Puspikā) :

> शाकेऽब्दे त्रियुगान्नशीतगुयुतेऽतीते विषौ वत्सरे माघे मासि च शुक्लपक्षदशमे श्री**वासुपूज्यर्षिणा** । प्रोक्तं पावन**दानशासन**मिदं ज्ञात्वा हितां(तं) कुर्वतां ध्यानं स्वर्णपरीक्षका इव सदा पात्रत्रये धार्मिका: ॥

Postcolophon (Uttara-puspikā) :

श्रीमद्वेळगुळविन्ध्यशैलमहितश्रीगोमटेशार्हतः श्रीपादाम्बुजसन्निधावनुचरः श्रीचारुकीर्तेर्गुरोः । पाताख्योऽलिखदादिर्वाणमुनये ग्रन्थं मुदेमं जडः सन्तः सन्तु करापराधशमने कारुण्यजातोद्यमाः ॥ स्वस्तिश्रीविजयाभ्युदयशालिवाहनशकवर्ष.....नेय श्रीम....नामसंवत्सरद आषाढशद्धपञ्चमीकृजवारदल्ल् बरदु संपूर्णिसि..... टूंकर्नोध :

## आवश्णचित्र-पश्चिय

– शी.

आ चित्रात्मक यन्त्र अथवा यन्त्रात्मक चित्र ते लोकपुरुषनुं चित्र छे. जैन परम्परा प्रमाणे सृष्टिनुं स्वरूप अने भूगोल केवां छे, तेनो अन्दाज आ यन्त्र द्वारा प्राप्त थाय छे. हिन्दु-वैदिक/पौराणिक परम्परामां जेम १४ लोक के १४ भुवन प्रसिद्ध छे, तेम जैन परम्परामां सृष्टि १४ राजलोक-प्रमाण मनाई छे. ए १४ राजलोकनुं स्वरूप तथा तेनुं अत्यन्त जटिल गणित-बन्नेने समजवा माटे आ यन्त्र-चित्र उपयुक्त छे.

आ चित्र जैन भूगोल-खगोल विज्ञान-विषयक होई अध्ययन माटे खूब आवश्यक छे. ते ज कारणे जैन भण्डारोनी पोथीओमां, कागळ ऊपर तथा वस्त्रपट रूपे आ चित्र विपुल प्रमाणमां आलेखातुं रह्युं छे. आ अंकना आवरणपृष्ठ ऊपर मूकवामां आवेल चित्र आवुं ज एक प्राचीन अने कलात्मक चित्र छे.

मांडवी-कच्छ स्थित खरतरगच्छ संघना ज्ञानभण्डारमांना आ पोथीचित्र के कागद-चित्रनी विशेषता तेनी कलात्मकतामां तो छे ज, परन्तु तेनी खास विशेषता ए छे के आ चित्र पर पुष्पिका - Colophon पण लखायेली छे, जे विरल बाबत गणाय. आ पुष्पिकाथी चित्र दस्तावेजी तेमज ऐतिहासिक मूल्य धरावती पुरावस्तु प्रमाणित थई जाय छे - आपोआप. पुष्पिका चित्रना मथाळे छे, अने तेनुं लखाण आ प्रमाणे छे : ''॥ ८००॥ संवत् १६०१ वर्षे आसउज वदि १० गुरुवारे । पुष्यनक्षत्रे पत्रमिदं श्रीचन्द्रकीर्तिसूरिभिः कारितं । आगरा नगर वास्तव्य । श्रा० भागांनिमित्तं ॥ चित्रकर मि० फलाझह दिलवली ॥

॥ पुरुषाकार लोकनालियन्त्रकमिदं । त्रसनाडी मध्यस्थ सर्वजीवात्मकं १४ राजप्रमाणं ॥

आ लेख अनुसार उपलब्ध थती जाणकारी कांईक आवी छे : १. आ चित्र कोई पोथीनो भाग न होतां स्वतन्त्र चित्र-यन्त्र तरीके आलेखायुं छे. २. १७मा शतकना प्रथम वर्षमां ज ते आलेखायुं होई, १६मा शतकनी

## डिसेम्बर २००७

चित्रकला-पद्धतिनी घेरी असर तेमां डोकाय छे. ३. आ. चन्द्रकीर्तिसूरि ते नागपुरीयबृहत्तपागच्छना प्रसिद्ध ग्रन्थकार आचार्य होवानुं जणाय छे, अने तेमनी नजर हेठळ दोरायेल आ यन्त्र होई ते सम्पूर्णत: अधिकृत दस्तावेज बनी रहे छे. ४. अने सौथी वधु महत्त्वपूर्ण वात ए छे के आ चित्र एक मुसलमान चित्रकारे आलेखेलुं छे. आवुं शुद्ध साम्प्रदायिक के धार्मिक, ते पण विज्ञानना विषयनुं होवाथी जटिल, चित्र एक मुस्लिम चित्रकार दोरे, अने वळी ते चित्र पर तेनुं नाम पण लखाय, ए साचे ज एक दुर्लभ घटना छे. आ ज कारणे आ चित्रनुं मूल्य अनेक रीते वधी जाय छे. मि० एटले मिर्जा होय तेम अटकळ थाय छे. चित्र आगरामां दोरायुं छे, तेथी त्यां मुघल बादशाहो द्वारा प्रेरित चित्र-शालाओमांना कोई चित्रकारे आ चित्र आलेख्युं होय तो ते सम्भवित गणाय.

प्रसंगोपात, आ चित्र परत्वे एक बे मुद्दा तरफ सुज्ञ जनोनुं ध्यान दोरवुं छे. आ चित्रनो सीधो अने स्पष्ट सम्बन्ध Jain Cosmology साथे छे. परन्तु ते बाबतने लक्ष्यमां लीधा विना ज आ चित्रने, तेमज जैन सृष्टिविज्ञान साथे सम्बद्ध एवा, जम्बूद्वीपना तेमज अढी द्वीपना इत्यादि चित्रपटो के चित्र-यन्त्रोने पण, तान्त्रिक मार्गनी उपासनाना यन्त्रो तरीके, दुनियाभरना विद्वानो ओळखे छे, छापे छे तथा प्रचारे छे, जे तद्दन अवास्तविक तथा अज्ञानमूलक स्थिति छे. Tata जैवी विविध कम्पनीओनां वार्षिक केलेन्डर्स होय, डायरी होय के पछी 'Tantra' विषयक देशी-विदेशी लेखकोनां सचित्र पुस्तको होय, अनेक स्थानोमां आ लोकपुरुषना यन्त्रने तान्त्रिक यन्त्रलेखे छापवामां तथा ओळखाववामां आवेल छे. एक खास परम्परा विषेना पोताना अज्ञानने पोतानी लाक्षणिक शोध के प्रतिपादन रूपे दर्शाववामां विद्वत्ता केटली ? संशोधन केटलुं ? वैज्ञानिकता केटली ? तेवा सवालो कोईने जरूर थाय.

बीजो मुद्दो एवो छे के आ चित्र जैन दृष्टिए सृष्टिविज्ञाननुं चित्र छे. आजे व्यापक रूपमां स्वीकारायेल विज्ञान, आ मान्यताने साम्प्रदायिक, पुराणी, अने तेथी अवास्तविक भले गणे. पण आजथी सेंकडो वर्षो पूर्वे, ज्यारे आधुनिक विज्ञान कदाच गर्भावस्थामां हशे, विज्ञानने विज्ञानलेखे प्रमाणित करे तेवां यन्त्रो, टेलिस्कोपिक साधनो वगेरे ज्यारे नहोतां, अने जे मानवर्साजत वेधशाला आदि साधनो हशे तेनो उपयोग के प्रयोग करवानुं पण जे लोकोने माटे सदंतर निषिद्ध के वर्ज्य हतुं, तेवे समये, तेवा निर्ग्रन्थ-अर्किचन जैन साधुओए आखीये सृष्टिनो ताग काढीने तेनुं सूक्ष्म-जटिल छतां अत्यन्त स्पष्ट अने बुद्धिगम्य गणित आप्युं, तेना आधारे समग्र सृष्टिना भूगोलीय-खगोलीय तमाम पिण्डो तथा स्थानोनी व्यवस्था दर्शावी आपी, आ कांई साधारण के अवैज्ञानिक घटना तो नथी ज. आजनुं विज्ञान आ जूनी वातोने भले हम्बग गणे, पण आजनुं आ मान्य विज्ञान पण आवती कालना विकसित संशोधन पछी हम्बग नहिज गणाय तेवुं नथी, ए पण समजी लेवुं ज रह्युं. अस्तु. आ चित्रनी फोटोकोपी करी आपवा बदल मांडवीना खरतरगच्छ संघना श्रीहरनीशभाई वगेरे कार्यवाहकोनो आभारी छुं.

## खुलासो

अंक ४१मां प्रकाशित 'स्याद्वादकलिका' नामे कृति आ पूर्वे एकाधिक स्थले प्रकाशित थई चुकी होवानुं जाणवामां आव्युं छे.

# नवां प्रक्रशनो

१. ज्ञानसार : स्वोपज्ञ बालावबोध साथे; कर्ता : उपाध्याय श्रीयशोविजयजी, सं. आ. प्रद्युम्नसूरि, डॉ. मालती के. शाह; प्र. श्रुतज्ञान प्रसारक सभा, अमदावाद, ई. २००७.

एक महत्त्वपूर्ण अने उपयुक्त प्रकाशन. ज्ञानसार ए श्रीयशोविजयजीनी अमर तत्त्वज्ञानपरक रचना छे. 'गागरमां सागर' ए रूढिप्रयोग आ रचना परत्वे सर्वांशे सार्थक ठरे तेवी आ रचना छे. तेनां गूढ तात्त्विक पदार्थ-रहस्योनुं उद्घाटन करवानी आवश्यकता कर्ताने ज जणाई हशे, तेथी तेमणे पोतेज तेना पर बालावबोधक भाषा-विवेचननी रचना करी छे. तेनी समीक्षित अने अधिकृत वाचना प्रथम वखत आ ग्रन्थमां सम्पादको द्वारा उपलब्ध थाय छे, जे तत्त्वजिज्ञासुओ माटे उत्सवरूप घटना छे.

विभिन्न ११ जेटली हाथपोथीओनो आधार लईने आ सम्पादन करवामां आव्युं छे. मालतीबहेन शाहे स्वयं ज्ञानसारना तत्त्वचिन्तनने ज विषय बनावीने करेल अध्ययन पर Ph.D. मेळवेल होई, तेमने माटे आ बालावबोधनुं श्रमसाध्य सम्पादनकार्य ऊंडा रसनो तथा अभ्यासनो विषय बनी रहेल छे.

सम्पादकीय निवेदनो, ज्ञानसारनो संक्षिप्त परिचय, उपयोगी अने अभ्यासपूर्ण परिशिष्टो थकी समृद्ध आ सम्पादनमां, श्लोक, तेनो बालावबोध अने ते पछी लोकभोग्य सरल भाषा (गुजराती)मां ते बन्नेनो सारगर्भित अर्थ आपवामां आवेल छे.

क्यांक अशुद्धिओ रही छे, जे खटके छे. दा.त. पहेला ज श्लोकमां 'लिलालग्नमिवाखिलम्', श्लोक २मां 'जात्यरत्नविभानि भा' इत्यादि.

सरस, समृद्ध सम्पादन आपवा बदल सम्पादकोने साधुवाद.

२. **पत्रमां तत्त्वज्ञान :** ले. उपा० यशोविजयजी; विवरण : मुनि धुरन्धर विजयजी; प्र. श्रुतज्ञान प्रसारक सभा, अमदावाद, ई. २००७.

उ. यशोविजयजीए लखेला बे तत्त्वज्ञानसभर पत्रो तथा तेना परना विशद विवरणनुं आ पुस्तक छे. आना प्रकाशनथी उपाध्यायश्रीजीना लखेला गहन पदार्थोनो ताग मेळववानुं अभ्यासीओ माटे सुलभ बनशे.

#### अनुसन्धान ४२

३. श्रीन्यायसिन्धुः, प्रणेताः आ. विजयनेमिसूरि, प्र. श्रीजैनग्रन्थप्रकाशन समिति, खम्भातः, ई. २००७.

जैन दर्शननुं नव्यन्यायनी शैलीए प्रतिपादन करतो, आशरे १३०० श्लोकोमां पथरायेलो अभ्यास-ग्रन्थ. ग्रन्थकारना सूरिपदारोहणनां सो वर्षनी उजवणीना उपलक्ष्यमां प्रारम्भ पामेली ग्रन्थमालानुं द्वितीय पुष्प. जैन दर्शनना तार्किक अध्येताओ माटे उपयोगी ग्रन्थ.

**४. शृङ्गार-वैराग्य तरङ्गिणी**, कर्ता : श्री सोमप्रभाचार्य; सम्पादन तथा अनुवाद : मुनि मृगेन्द्रविजयजी; प्र. इमेज पब्लिकेशन्स प्रा. ली. मुम्बई-अमदावाद, ई. २००७.

मूळ कृति, अन्वय, श्लेष-प्रदर्शक पद-निर्देश, अनुवाद, छन्दनाम-आटली उपयुक्त बाबतोने योग्य अने विवेकपूर्ण ढबे संयोजित करीने करवामां आवेलुं मजानुं सम्पादन. जैन साधु एटले रूक्ष-शुष्क वैराग्य, आवी एक धारणा आपणे त्यां प्रवर्ते छे. ते धारणानो छेद पण उडाडे तेमज तेने अंशत: यथार्थ पण ठेरवे तेवी आ, संस्कृत, ४६ श्लोकात्मक रचना छे. वैराग्यपर्यवसायी शृङ्गारनुं प्रतिपादन केवी रीते थई शके ते आ रचना द्वारा बराबर पामी शकाय छे.

